महर्षि शाही स्वामी भजनावली सटीक

(मूल पद्य, शब्दार्थ और भावार्थ-सहित)

संतमत-सत्संग की स्तुति-प्रार्थना, आरती और
गुरु-कीर्त्तन-सहित

टीकाकार :

स्वामी दयानन्दजी महाराज

सम्पर्क सूत्र-९९५५८३२२८५, ९४७२६१२८८१

महर्षि मेँहीँ धाम, मणियारपुर, बौंसी, बाँका

- *प्रकाशक* : श्रीदीनदयाल शर्मा के सुपुत्र श्रीप्रकाश शर्मा
  के अनुज श्रीनन्दलाल शर्मा (मो०-९९३४०४५३०७)
  ग्राम-जलमड़ै, पो०-दोमुहान, जिला-बाँका (बिहार)
  एवं, श्रीअनिल प्रसाद मंडल (शिक्षक)
  संतमत-सत्संग मंदिर, खवासपुर, पीरपैंती,
  भागलपुर-८१३२०९

- *कॉपीराइट* : टीकाकार के अधीन

- *संस्करण* : प्रथम, नवम्बर, सन् २,०१० ई०
  २,१०० प्रतियाँ

- *सहयोग राशि* : २०/- रुपये मात्र

- द्वितीय संस्करण के आवरण दाता :
  श्रीमती अहिल्या देवी पति श्री घनश्याम पासवान
  ग्राम-शोभानपुर, थाना-अमरपुर, जिला-बाँका,
  मो०-८८०९९३९५९५

- पुस्तक प्राप्ति-स्थान :
  १. सेवक उत्तमानन्द 'दर्शन'
  (मो०-९७७१६०७२८५, ८०५१७४८१०६
  महर्षि मेँहीँ धाम, मणियारपुर, बौंसी, बाँका
  २. श्री नन्दलाल शर्मा (मो०-९८११०९५३०२)
  एस./१५३ गली न०४, वेस्ट विनोदनगर, दिल्ली

- अक्षर-समायोजक : श्रीराजेन्द्र साह, मो०-९९३४६१५९२२
  महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर-३

- मुद्रक :

लगभग ७-८ वर्ष पूर्व कोशी प्रमंडल के एक सज्जन इसी समारोह के सुअवसर पर पधारे हुए थे। उनका नाम तो याद नहीं है, मुझे लगा कि वे परम पूज्य प्रातः स्मरणीय अनन्त श्रीविभूषित परमाराध्य श्रीसद्गुरु महाराजजी के बड़े ही पुजारी, भक्त एवं परम पूज्यपाद संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज के बहुत ही श्रद्धालु जैसे थे। सुबह-सुबह परम पूज्यपाद, श्रीगुरु महाराजजी के मंदिर के आगे बरामदे पर विराजमान थे, उसी समय वे भक्त मुझे कहते हैं कि आप शाही स्वामी भजनावली की टीका कीजिए। गुरुदेव की कृपा से मेरे मुख से अनायास ही निकल गया कि हाँ मैं टीका करूँगा। उसी समय से मेरे मन में ग्लानि होती रहती थी कि मैं पूज्यपाद श्री के सम्मुख बोल तो गया कि मैं लिखूँगा; लेकिन लिखना प्रारंभ ही नहीं करता। बार-बार मन-ही-मन कई वर्षों तक शर्मिन्दा होता रहा और सोचता रहा कि मैं कितना झूठा बना हुआ हूँ। परम पूज्यपादश्री मौज में आकर मुझे कलम-कॉपी दे दिया करते। मैं समझ नहीं पाता कि इसका अभिप्राय क्या है?

इस बार भी मास-ध्यान के विराट् आयोजन के शुभ अवसर पर बहुत ही अच्छी जैसी डायरी मुझे दे देने की कृपा किये। परम पूज्य प्रातः स्मरणीय अनन्त श्रीविभूषित परमाराध्य श्रीसद्गुरु महाराजजी की इस बार की १२६वीं परम पावन जयन्ती के स्वर्णिम अवसर पर मेरे मन में हुआ कि आज (मंगलवार वैशाख शुक्ल त्रयोदशी २५ मई, २०१० ई० के) ही इस टीका का शुभारम्भ हो जाना चाहिए। मैं परमाराध्य श्रीसद्गुरु महाराजजी के मंदिर में जाकर मंगलकामना-सहित त्रैलोक्य अति पावन पदाम्बुजों में प्रणाम कर प्रार्थना करके परम पूज्यपाद श्री संत सद्गुरु महर्षि श्रीशाही स्वामीजी के भी अत्यन्त पवित्र चरणारविन्द में शीश टेककर नमस्कार करते हुए मंगलकामना कर इस गुरुतम कार्य की शुरुआत कर दी। मैं इसलिए नहीं कह सकता कि इसमें पूर्णरूपेण सफल हो पाया हूँ कि जहाँ संत की महिमा, इनके गुणों, भावों का पूर्णरूपेण वर्णन ब्रह्मा,

विष्णु, महेश, विद्या की अधिष्ठात्री देवी माता शारदा, कवि, पंडित आदि करने में अपने को असमर्थ कबूल करते, यथा–

विधि हरिहर कवि कोविद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मो सन कहि जात न कैसे। साक बनिक मनि गुन गन जैसे॥

–गो० तुलसीदासजी महाराज

अगम अगाध है संत की महिमा, को अस है जो गाई॥
ब्रह्मा विष्णु महेश शारदा, यहु जन गए लजाई।
संत की महिमा संत ही जानैं, और नेति कहि गाई॥

–संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज

फिर मैं सर्व तुच्छ, अति अज्ञ भला कैसे इसे पूरा-पूरा वर्णन कर आप विज्ञ, विद्वानों को संतुष्ट कर सकूँगा। मैंने तो इसे आप विद्वत्तमों के अक्षांज के समक्ष एवं कर-कमलों तक इसीलिए पहुँचाने का प्रयास किया कि इसमें हुई खामियों, त्रुटियों, कमियों को आप सुधार कर देने की महति कृपा करेंगे। आपके इस पुनीत कार्य को मैं आपका बहुत बड़ा आशीर्वाद समझूँगा, ताकि अगले प्रकाशन में भक्तों तक यथार्थभाव पहुँच पाए। मैं उन्हें अपना आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने इस कार्य को सम्पन्न करने में किसी भी तरह से हाथ बँटाया है। 'त्वदीयं वस्तु गुरुदेव तुभ्यमेव समर्पये।'

–दयानन्द

॥ ॐ श्रीसद्गुरवे नमः ॥

पूज्यपाद संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज के संक्षिप्त जीवन-दर्शन

पूज्यपाद संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज का जन्म विक्रमीय संवत् १९७९, ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष प्रतिपदा, शनिवार तदनुसार सन् १९२२ ई० के जून माह में उत्तरप्रदेश के देवरिया मंडलान्तर्गत छोटी गंडक के तट पर शोभायमान नौतन नामक ग्राम में हुआ है। आपके धर्मप्राण पिताश्री विशेन क्षत्रिय कुलभूषण बाबू श्रीतिलक धारी शाहीजी थे और धर्मपरायणा एवं करुणामयी माता श्रीमती सुखराजी देवी थीं। आपका राशि का नाम श्री बुद्धिसागर शाही है। आप चार भाई हैं, बहन एक भी नहीं। भाइयों में बड़े होने के कारण सब लोग आपको आदरपूर्वक 'बड़कन बाबू' कहकर संबोधित करते थे।

आपकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव के ही विद्यालय में हुई। आपका विद्यालय का नाम श्रीअवधकिशोर शाही था। मनमौजी प्रकृति होने के कारण आप मात्र चौथी कक्षा तक ही पढ़ पाये। आपको गणित और भूगोल में विशेष अभिरुचि थी। हिन्दी भाषा के अतिरिक्त आपने फारसी भी सीखी थी। बचपन से ही धर्म की ओर आपकी विशेष प्रवृत्ति थी। इसी संस्कारवश आप 'श्रीहनुमान चालीसा' और 'श्रीदुर्गा-चालीसा' का बड़ी ही तन्मयता के साथ पाठ किया करते थे। यह देख आपके संबंध के दादा बाबू श्रीरघुनाथ शाहीजी आपको 'पंडितजी' कहा करते थे। आप पीपल वृक्ष की जड़ में तथा भगवान् सूर्यदेव को बड़ी ही श्रद्धा के साथ जल अर्पित करते थे। पढ़ाई छोड़ने के उपरांत आपका उपनयन संस्कार बड़ी ही धूमधाम के साथ आपके ननिहाल फूलपुर, जिला बस्ती में सम्पन्न हुआ।

धर्म की ओर आपकी बढ़ती प्रवृत्ति को देखकर आपके पिताजी आशंकित हो उठे और आपको गार्हस्थ्य-जीवन में बाँध देना चाहा। आप विवाह करने के पक्ष में बिल्कुल नहीं थे; लेकिन

पिताजी की जिद्द के सामने आपकी एक न चली। सन् १९४० ई० के लगभग गोरखपुर जिलान्तर्गत माड़ापार गाँव की एक कुलीन कन्या के साथ आपका विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह के चार साल बाद आपको एक पुत्र हुआ, जिसका नाम 'श्रीश्यामनारायण शाही' है, जो सकरोहर (खगड़िया) में रहते हैं। इनके अतिरिक्त आपको कोई संतान नहीं हुई।

आप अपने पूर्व संस्कारवश आध्यात्मिक अंतःप्रेरणा से प्रेरित हो रहे थे। परिवार में रहना आपको अच्छा नहीं लगता था। अक्टूबर, १९४१ ई० में अपने फूफा श्रीभगवती प्रसाद सिंहजी के आग्रह पर उनकी जमींदारी की देख- रेख करने के लिए आप सकरोहर आ गये। अगस्त, १९४२ ई० में आप पुनः नौतन आ गये। संत कबीर साहब की तरह कपड़ा बुनकर स्वावलंबी जीवन व्यतीत करने की बात आपने सोची और हाटा सबडिविजन के अंतर्गत समांगी पट्टी में कुछ ही दिनों में हस्तकरघा चलाने में आप निपुण हो गये। अपने बुने कपड़े आप गरीबों को दान भी करते थे।

आप अंदर से शांतिस्वरूप परमात्मा की खोज के लिए व्याकुल थे। आप ऐसे सच्चे संत सद्गुरु की खोज कर रहे थे, जो आपकी आध्यात्मिक प्यास को बुझा सके। वैराग्य की उठती तरंग सांसारिक बंधनों को तोड़ डालना चाह रही थी। इसी क्रम में सन् १९४४ ई० के आस-पास श्रीभगवती बाबू का देहान्त हो गया। उनके परिवार के विशेष आग्रह एवं अपने पिताजी की आज्ञा से आप पुनः सकरोहर आ गये। सन् १९४५ ई० में आपने महेशखूँट स्टेशन पर लोगों की भीड़ देखी, पता लगा कि ये सत्संगी लोग हैं, जो पनसलवा से संतमत-सत्संग के वार्षिक महाधिवेशन से लौट रहे हैं, जहाँ पूज्यपाद महर्षि मँहीं परमहंसजी महाराज पधारे हुए हैं। सत्संग-प्रेमियों के मुख से संतमत-विषयक चर्चाएँ एवं महर्षिजी के गुण-गान सुनकर आपके अंदर यह अटल विश्वास हो रहा था कि महर्षिजी पहुँचे हुए महापुरुष हैं। विश्वास के साथ ही महर्षिजी के दर्शन की इच्छा आपमें तीव्रतम हो उठी, फिर तो आप ऐसे सहयोगी की तलाश

किसी कार्यकुशल, नीति-सम्पन्न, कर्तव्यनिष्ठ, त्यागी और उदार प्रबंधक की खोज वे कर रहे थे। उनकी कृपादृष्टि आपपर जा टिकी। सन् १९७१ ई० में आप कुप्पाघाट आश्रम बुला लिये गये और गुरु महाराज की पावन जयन्ती के शुभ अवसर पर आपको सर्वसम्मति से व्यवस्थापक के उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर आसीन करके गौरवान्वित किया गया। आपके शालीन आचार-विचार, गुरुदेव के श्रीचरणों के प्रति एकनिष्ठ श्रद्धा और भक्ति ने आपको गुरु महाराज के हृदय में स्थान दिला दिया। गुरुदेव बार-बार कहा करते थे–'शाही स्वामी मेरे हृदय हैं।' कोई कल्पना कर सकता है कि एक संत का हृदय कैसा होगा! आपने गुरुदेव से कई बार प्रार्थना की–'हुजूर ! मुझे व्यवस्थापक-पद से मुक्त किया जाय।' लेकिन गुरुदेव हर बार यही कहा करते थे–'जबतक मैं (जीवित) हूँ, तबतक आप भी व्यवस्थापक बने रहें।'

गुरुदेव ने अपने शरीर की अत्यधिक शिथिलता के कारण सन् १९८३ ई० से सत्संग-प्रचार कार्य बंद कर दिया। इसके बाद सत्संग-प्रचार का कार्य आपके सुदृढ़ कंधों पर आ पड़ा। एक साथ ही व्यवस्थापन-कार्य एवं प्रचार- कार्य के कारण आपकी परेशानी बढ़ रही थी। गुरुदेव के आदेश के कारण आप व्यवस्थापक-पद त्याग भी नहीं सकते थे। ८ जून, १९८६ ई०, रविवार को गुरुदेव ब्रह्मलीन हो गये। इसके बाद अक्टूबर, सन् १९८६ ई० में आपने व्यवस्थापक-पद से त्याग-पत्र दे दिया। महासभा ने आपकी कार्यकुशलता और त्याग-भावना के प्रति अपना आभार प्रकट करते हुए त्याग-पत्र स्वीकार किया और संतमत के प्रचार-प्रसार जैसे दायित्वपूर्ण कार्य को सुचारु एवं संगठित रूप से आगे बढ़ाने का कार्य आपपर सौंप दिया। साथ ही, सभी विभागों की उचित देख-रेख करते रहने का भी आपसे निवेदन किया। वास्तव में, आपके कार्य-काल में आश्रम की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती रही।

गुरुदेव कहते थे–'सत्संग मेरी साँस है।' आप भी इस उक्ति को अपने जीवन में चरितार्थ कर रहे हैं। 'सादा जीवन, उच्च विचार' के तो आप प्रतिरूप ही नजर आते हैं। आपका भव्य दीप्त चित्ताकर्षक

रूप हाथरस के संत तुलसी साहब के चित्र की याद दिलाता है। आप जहाँ भी रहते हैं, वहाँ खुशी का माहौल नजर आता है। स्वयं गुरुदेव भी आपकी विनोदपूर्ण बातें सुनकर मिनटों हँसते रहते थे। आप भगवान् बुद्ध की तरह धन-पुत्र-पत्नी का मोह त्यागकर संन्यास-जीवन में हैं। सन् १९७५ ई० में पेट में कैन्सर का रोग हो जाने से आपकी पत्नी परलोकवासिनी हो गयीं। कुछ महीने पूर्व सितम्बर, सन् १९८९ ई० में आपके प्रोस्टेट ग्लैंड का ऑपरेशन पटना में हुआ। अभी आप स्वस्थ होकर सत्संग-कार्य में लगे हुए हैं।

महाधिवेशन में लाखों धर्मप्रमियों को अपनी पीयूष-वाणी से मुग्ध करने की कला आपमें विद्यमान है। संत-भाषा, जन-भाषा आपके प्रवचन की भाषा है, जिसमें कोई पांडित्य-प्रदर्शन नहीं होता, कोई कृत्रिमता नहीं होती, कोई अहंकार नहीं होता; बल्कि साध नाजन्य अनुभूति, भाव-प्रवणता प्रकट होती है। आपका सादा जीवन, उच्च विचार, सदाचारी, वीतरागी, निर्मल चरित्र, मितव्ययी होना अपने सद्गुरु का अनुसरण है। गुरु के आदेश-उपदेश को आपने अपने जीवन में अक्षरशः उतार लिया है। अपने परिश्रम, साधना, त्याग और कर्मयोग के बल पर आपने महर्षि मेँहीँ धाम, मणियारपुर; महर्षि मेँहीँ आश्रम, पटना का निर्माण किया।

आप अपने गुरुदेव महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज के आध्यात्मिक ज्ञान-सिद्धांतों को कश्मीर से ले बंगाल तक, नेपाल से कन्याकुमारी तक और भारत के महानगरों पटना, वाराणसी, लखनऊ, कानपुर, दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, चित्रकूट आदि स्थानों में भ्रमण कर मुक्तहस्त से वितरित कर रहे हैं। देश के कोने-कोने में आप संतमत के ज्ञान को प्रचारित कर रहे हैं। आपने स्वयं को सद्गुरु के चरणों में समर्पित कर दिया है। आपका जीवन-दर्शन संत-मार्ग पर सतत अग्रसर है। तभी तो इस बार के हुए अखिल भारतीय संतमत-सत्संग ९९वें वार्षिक महाधिवेशन, सप्तसरोवर, हरिद्वार में दिनांक १.५.२०१० को अपराह्नकालीन सत्संग के शुभ अवसर पर तुलसी मानस मंदिर, हरिद्वार के महामंडलेश्वर स्वामी श्री अर्जुनपुरीजी महाराज ने अन्य महामंडलेश्वरों हरिसेवा आश्रम के महामंडलेश्वर स्वामी

(३)

(प्रातःकालीन गुरु-स्तुति)

मंगल मूरति सतगुरू, मिलवैं सर्वाधार ।
मंगलमय मंगल करण, विनवौं बारम्बार ॥१॥
ज्ञान-उदधि अरु ज्ञान-घन, सतगुरु शंकर रूप ।
नमो-नमो बहु बार हीं, सकल सुपूज्यन भूप ॥२॥
सकल भूल-नाशक प्रभू, सतगुरु परम कृपाल ।
नमो कंज-पद युग पकड़ि, सुनु प्रभु नजर निहाल ॥३॥
दया-दृष्टि करि नाशिये, मेरो भूल अरु चूक ।
खरो तीक्ष्ण बुधि मोरि ना, पाणि जोड़ि कहुँ कूक ॥४॥
नमो गुरू सतगुरु नमो, नमो-नमो गुरुदेव ।
नमो विघ्न हरता गुरू, निर्मल जाको भेव ॥५॥
ब्रह्म रूप सतगुरु नमो, प्रभु सर्वेश्वर रूप ।
राम दिवाकर रूप गुरु, नाशक भ्रम-तम-कूप ॥६॥
नमो सुसाहब सतगुरू, विघ्न विनाशक द्याल ।
सुबुधि विगासक ज्ञानप्रद, नाशक भ्रम-तम-जाल ॥७॥
नमो-नमो सतगुरु नमो, जा सम कोउ न आन ।
परम पुरुषहू तें अधिक, गावें सन्त सुजान ॥८॥

(४)

(छप्पय)

जय जय परम प्रचण्ड, तेज तम-मोह विनाशन ।
जय जय तारण तरण, करन जन शुद्ध बुद्ध सन ॥
जय जय बोध महान, आन कोउ सरवर नाहीं ।
सुर नर लोकन माहिं, परम कीरति सब ठाहीं ॥
सतगुरु परम उदार हैं, सकल जयति जय-जय करें ।
तम अज्ञान महान अरु, भूल-चूक-भ्रम मम हरें ॥१॥
जय जय ज्ञान अखण्ड, सूर्य भव-तिमिर विनाशन ।
जय जय जय सुख रूप, सकल भव-त्रास हरासन ॥
जय-जय संसृति-रोग-सोग, को वैद्य श्रेष्ठतर ।
जय-जय परम कृपाल, सकल अज्ञान चूक हर ॥
जय-जय सतगुरु परम गुरु, अमित-अमित परणाम मैं ।
नित्य करूँ सुमिरत रहूँ, प्रेम-सहित गुरुनाम मैं ॥२॥
जयति भक्ति-भण्डार, ध्यान अरु ज्ञान-निकेतन ।
योग बतावनिहार, सरल जय-जय अति चेतन ॥

करनहार बुधि तीव्र, जयति जय-जय गुरु पूरे ।
जय-जय गुरु महाराज, उक्ति-दाता अति रूरे ॥
जयति-जयति श्री सतगुरू, जोड़ि पाणि युग पद धरौं ।
चूक से रक्षा कीजिये, बार-बार विनती करौं ॥३॥
भक्ति योग अरु ध्यान को, भेद बतावनिहारे ।
श्रवण मनन निदिध्यास, सकल दरसावनिहारे ॥
सतसंगति अरु सूक्ष्म वारता, देहिं बताई ।
अकपट परमोदार न कछु, गुरु धरें छिपाई ॥
जय-जय-जय सतगुरु सुखद, ज्ञान सम्पूरण अंग सम ।
कृपा-दृष्टि करि हेरिये, हरिय युक्ति बेढंग मम ॥४॥

(५)

(प्रातःकालीन नाम-संकीर्त्तन)

अव्यक्त अनादि अनन्त अजय, अज आदि मूल परमातम जो ।
ध्वनि प्रथम स्फुटित परा धारा, जिनसे कहिये स्फोट है सो ॥१॥
है स्फोट वही उद्गीथ वही, ब्रह्मनाद, शब्दब्रह्म ओ३म् वही ।
अति मधुर प्रणव ध्वनि धार वही, है परमातम-प्रतीक वही ॥२॥
प्रभु का ध्वन्यात्मक नाम वही, है सारशब्द सत्शब्द वही ।
है सत् चेतन अव्यक्त वही, व्यक्तों में व्यापक नाम वही ॥३॥
है सर्वव्यापिनि ध्वनि राम वही, सर्व-कर्षक हरि कृष्ण नाम वही ।
है परम प्रचण्डिनि शक्ति वही, है शिव शंकर हर नाम वही ॥४॥
पुनि राम नाम है अगुण वही, है अकथ अगम पूर्णकाम वही ।
स्वर-व्यंजन-रहित अघोष वही, चेतन ध्वनि-सिन्धु अदोष वही ॥५॥
है एक ओम् सत्नाम वही, ऋषि-सेवित प्रभु का नाम वही ।
X X X X X मुनि-सेवित गुरु का नाम वही ।
भजो ॐ ॐ प्रभु नाम यही, भजो ॐ ॐ 'मेँहीँ' नाम यही ॥६॥

(६)

(सन्तमत-सिद्धान्त)

१. जो परम तत्त्व आदि-अन्त-रहित, असीम, अजन्मा, अगोचर, सर्वव्यापक और सर्वव्यापकता के भी परे है, उसे ही सर्वेश्वर-सर्वाधार मानना चाहिए तथा अपरा (जड़) और परा (चेतन); दोनों प्रकृतियों के पार में, अगुण और सगुण पर, अनादि- अनन्त-स्वरूपी, अपरम्पार शक्तियुक्त, देशकालातीत, शब्दातीत, नाम-रूपातीत, अद्वितीय, मन-बुद्धि और इन्द्रियों के परे जिस परम सत्ता पर यह सारा प्रकृति-मण्डल एक महान् यन्त्र की नाईं परिचालित होता रहता है, जो

अनुयायियों-द्वारा सन्तमत के भिन्न-भिन्न नामकरण होने के कारण सन्तों के मत में पृथक्त्व ज्ञात होता है; परन्तु यदि मोटी और बाहरी बातों को तथा पन्थाई भावों को हटाकर विचारा जाय और संतों के मूल एवं सार विचारों को ग्रहण किया जाय, तो यही सिद्ध होगा कि सब सन्तों का एक ही मत है।

(९)

(अपराह्न एवं सायंकालीन विनती)

प्रेम-भक्ति गुरु दीजिये, विनवौं कर जोड़ी।
पल-पल छोह न छोड़िये, सुनिये गुरु मोरी ॥१॥
युग-युगान चहुँ खानि में, भ्रमि-भ्रमि दुख भूरी।
पाएउँ पुनि अजहूँ नहिं, रहुँ इन्हतें दूरी ॥२॥
पल-पल मन माया रमे, कभुँ विलग न होता।
भक्ति-भेद बिसरा रहे, दुख सहि-सहि रोता ॥३॥
गुरु दयाल दया करी, दिये भेद बताई।
महा अभागी जीव के, दिये भाग जगाई ॥४॥
पर निज बल कछु नाहिं है, जेहि बने कमाई।
सो बल तबहीं पावऊँ, गुरु होयँ सहाई ॥५॥
दृष्टि टिकै स्रुति धुन रमै, अस करु गुरु दाया।
भजन में मन ऐसो रमै, जस रम सो माया ॥६॥
जोत जगे धुनि सुनि पड़ै, स्रुति चढ़ै अकाशा।
सार धुन्न में लीन होइ, लहे निज घर वासा ॥७॥
निजपन की जत कल्पना, सब जाय मिटाई।
मनसा वाचा कर्मणा, रहे तुम में समाई ॥८॥
आस त्रास जग के सबै, सब वैर व नेहू।
सकल भुलै एके रहे, गुरु तुम पद स्नेहू ॥९॥
काम क्रोध मद लोभ के, नहिं वेग सतावै।
सब प्यारा परिवार अरु, सम्पति नहिं भावै ॥१०॥
गुरु ऐसी करिये दया, अति होइ सहाई।
चरण-शरण होइ कहत हौं, लीजै अपनाई ॥११॥
तुम्हरे जोत-स्वरूप अरु, तुम्हरे धुन-रूपा।
परखत रहूँ निशि-दिन गुरु, करु दया अनूपा ॥१२॥

(आरती)

(१०)

आरति संग सतगुरु के कीजै। अन्तर जोत होत लख लीजै ॥
पाँच तत्त्व तन अग्नि जराई। दीपक चास प्रकाश करीजै ॥

गगन-थाल रवि-शशि फल-फूला। मूल कपूर कलश धर दीजै ॥
अच्छत नभ तारे मुक्ताहल। पोहप माल हिय हार गुहीजै ॥
सेत पान मिष्टान्न मिठाई। चन्दन धूप दीप सब चीजैं ॥
झलक झाँझ मन मीन मँजीरा। मधुर-मधुर धुनि मृदंग सुनीजै ॥
सर्व सुगन्ध उड़ि चली अकाशा। मधुकर कमल केलि धुनि धीजै ॥
निर्मल जोत जरत घट माहीं। देखत दृष्टि दोष सब छीजै ॥
अधर-धार अमृत बहि आवै। सतमत-द्वार अमर रस भीजै ॥
पी-पी होय सुरत मतवाली। चढ़ि-चढ़ि उमगि अमीरस रीझै ॥
कोट भान छवि तेज उजाली। अलख पार लखि लाग लगीजै ॥
छिन-छिन सुरत अधर पर राखै। गुरु-परसाद अगम रस पीजै ॥
दमकत कड़क-कड़क गुरु-धामा। उलटि अलल 'तुलसी' तन तीजै ॥

(११)

आरति तन-मन्दिर में कीजै। दृष्टि युगल कर सन्मुख दीजै ॥
चमके बिन्दु सूक्ष्म अति उज्ज्वल। ब्रह्मजोति अनुपम लख लीजै ॥
जगमग-जगमग रूप-ब्रह्मण्डा। निरखि-निरखि जोती तज दीजै ॥
शब्द-सुरत-अभ्यास सरलतर। करि-करि सार शबद गहि लीजै ॥
ऐसी जुगति काया-गढ़ त्यागि। भव-भ्रम-भेद सकल मल छीजै ॥
भव-खण्डन आरति यह निर्मल। करि 'मेँहीँ' अमृत रस पीजै ॥

(१२)

(गुरु-संकीर्त्तन)

भजु मन सतगुरु सतगुरु सतगुरु जी ॥ टेक ॥
जीव चेतावन हंस उबारन, भव भय टारन सतगुरु जी ॥ भजु०॥
भ्रम तम नाशन ज्ञान प्रकाशन, हृदय विगासन सतगुरु जी ॥ भजु०॥
आत्म अनात्म विचार बुझावन, परम सुहावन सतगुरु जी ॥ भजु०॥
सगुण अगुणहिं अनात्म बतावन, पार आत्म कहैं सतगुरु जी ॥ भजु०॥
मल अनात्म ते सुरत छोड़ावन, द्वैत मिटावन सतगुरु जी ॥ भजु०॥
पिण्ड ब्रह्माण्ड के भेद बतावन, सुरत छोड़ावन सतगुरु जी ॥ भजु०॥
गुरु-सेवा सत्संग दृढ़ावन, पाप निषेधन सतगुरु जी ॥ भजु०॥
सुरत-शब्द-मारग दरसावन, संकट टारन सतगुरु जी ॥ भजु०॥
ज्ञान विराग विवेक के दाता, अनहद राता सतगुरु जी ॥ भजु०॥
अविरल भक्ति विशुद्ध के दानी, परम विज्ञानी सतगुरु जी ॥ भजु०॥
प्रेम दान दो प्रेम के दाता, पद राता रहें सतगुरु जी ॥ भजु०॥
निर्मल युग कर जोड़ि के विनवौं, घट-पट खोलिय सतगुरु जी ॥ भजु०॥

❑ ❑ ❑

महर्षि शाही स्वामी भजनावली सटीक

(१)

॥ ईश-स्तुति ॥

सुनो प्रभु एक विनय यह मोर ।टेक॥
अति अभिलाष करूँ तुव दशन, पर न बुद्धि अरु जोर ।
जेहि विधि होवै सफल मनोरथ, चहूँ कृपा तस तोर ॥
कहत अरूप स्वरूप तुम्हारा, कृपापात्र जो तोर ।
आदि अंत अरु मध्य विहीना, क्षर अक्षर वहि ओर ॥
अलख अपार वो अगम अगोचर, नहिं मन बुधि को दौर ।
ऐसा तेरा रूप प्रभु है, कहत सन्त दे जोर ॥
यह स्वरूप मम दृष्टि गहे किमि, मैं तो विषय-चकोर ।
धरती पड़ा छुवन अम्बर की, भाँति नीच मति मोर ॥
अपने से हूँ निराश आपसे, आशा मुझे अथोर ।
देहु दरस दरसनियाँ 'शाही', विनवत हैं कर जोर ॥

शब्दार्थ—विनय = प्रार्थना। अभिलाष = अभिलाषा, इच्छा, तमन्ना, चाह, मनोरथ। तुव = आपके, आपका। पर = लेकिन, परन्तु। अरु = और। जोर = बल, ताकत। मनोरथ = मन की कामना। विधि = ढंग, तरीका। तस = वैसा, उसी तरह। आदि = शुरूआत, प्रारम्भ। विहीना = रहित, विहीन, बिना। क्षर = नाशवान, विनाशशील। अक्षर = अनश्वर, अविनाशी। अलख = जो देखा न जा सके। अपार = असीम, जिसे पार नहीं किया जा सकता है। अगम = पहुँच से बाहर, मातम से परे, दुःख से परे। अगोचर = इन्द्रियातीत, इन्द्रियों के ज्ञान से परे। दौर = पहुँच। गहे = ग्रहण करे। किमि = कैसे। चकोर = एक तरह की पक्षी जो चन्द्रमा का प्रेमी होता है। छुवन = स्पर्श करना, छूना। अम्बर = आकाश। दरशनियाँ = दर्शन करनेवाला। अथोर = बहुत। आशा = भरोसा, विश्वास।

भावार्थ—हे मेरे सर्वेश्वर! आपके चरणारविन्द में यह मेरी एक प्रार्थना है।टेक॥ मेरी अत्यन्त लालसा है कि मैं आपके दर्शन करूँ; लेकिन बुद्धि और बल से बिल्कुल हीन हूँ, लाचार हूँ। जिस

भी तरह से मेरा यह मनोरथ सफल हो जाए, वैसी ही आपकी अनुकम्पा चाहता हूँ। आपके जो कृपापात्र हैं, वे आपके स्वरूप के संबंध में कहते हैं कि आपका स्वरूप रूप-रहित, प्रारंभ-रहित, अंत-रहित, मध्य-रहित और नाशवान तथा विनाशी तत्त्वों से भी परे है॥ आप साधारण दृष्टि क्या, दिव्य चक्षु से भी देखे नहीं जा सकते (आप अलख हैं), असीम, अनन्त, अगम, इन्द्रियों के ज्ञान से परे तथा आप तक मन-बुद्धि पहुँच नहीं सकती। हे प्रभु! संत जोरदार शब्दों में कहते हैं कि आपका ऐसा ही बड़ा विलक्षण रूप है॥ आपके इस स्वरूप को भला मेरी आँखें कैसे देख सकती हैं, ग्रहण कर सकती हैं। हर वक्त मेरा मन विषय-विकार की चाहना में रहता है। मेरी तो बुद्धि उसी तरह अत्यन्त गिरी हुई है, नीच है, जिस तरह कोई धरती पर पड़ा रहे और आकाश को छूना चाहे॥ अपने से तो निराश हो चुका हूँ; लेकिन आपसे मुझे बहुत भरोशा, आशा है। दर्शनाभिलाषी संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि हे मेरे परम प्रभु परमात्मा! मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि मुझे दर्शन देने की कृपा करें।

(२)

॥ गुरु-महिमा ॥

साधो भाई हरि गुरु एकहि जानो ।
जोई हरि हैं सोई गुरु हैं, भेद तनिक नहिं आनो ॥
संत कबीर कह्यो गुरु साहब, साखी शब्द प्रमानो ।
(गुरु) पारब्रह्म सदा नमस्कारउ, बाबा नानक भानो ॥
तुलसिदास नररूप हरी गुरु, मानस माहिं बखानो ।
सूरदास निज अंत समय में, कह्यो विलग नहिं मानो ॥
चरनदास की बानी पढ़िये, गुरु बिन और न जानो ।
साहब से सद्गुरू भये यह, दास गरीब बखानो ॥
ऐसहिं और संत सद्ग्रंथहिं, कह्यो बात मन मानो ।
जो हरि गुरु में अंतर माने, 'शाही' भय ठहरानो ॥

शब्दार्थ—साधो = साधु, सत्पुरुष, सज्जन। हरि = सर्वेश्वर।

इस बात की साक्षी भगवान वेद और पुराण देते हैं। गुरुदेव ब्रह्मा, विष्णु और देवाधिदेव महादेव भगवान शंकरजी की तरह हैं। सारी दुनियाँ में इनसे बढ़कर महान् कोई भी दूसरे नहीं हैं॥ गुरु महाराज सद्ज्ञान सदुपदेश, सद्शिक्षा-दीक्षारूपी प्रदीप प्रज्वलित कर समस्त दुःखों की जड़ मोहरूपी अंधकार का निवारण कर देते हैं। संत सद्गुरु महाराज जीव को संसार-समुद्र से पार उतारकर समग्र परेशानी को दूर कर देते हैं॥ संसार में गुरु महाराजजी की चरणधूल, रज साक्षात् कल्पवृक्ष और कामधेनु की तरह है, इनके चरणारविन्द की सेवा किये बगैर किन्हीं का भी उद्धार संभव नहीं॥

(४)

अरे मन अब भी तो, तू चेत।
क्या क्या दशा हो चुकी तेरी, फिर भी पड़ा अचेत॥१॥
झूठे जग में सुख प्रतीत कर, आज नहीं कल की आशा पर।
जनम मरण दुख लेत॥२॥
मेरा मेरी कहते जिसको, नदी नाव संयोग सरिस सो।
तन धन स्वजन समेत॥३॥
बीते बहुत समय की सुधिकर, जो प्रभु ने दी थी किरपा करि।
भव दुख तरने हेत॥४॥
है लम्बा जीवन आगे का, 'शाही' इसे सुखी करने का।
केवल गुरु संकेत॥५॥

शब्दार्थ—चेत = सचेत हो जाओ, सतर्क हो जाओ, होश मे आ जाओ। दशा = हालत, स्थिति। अचेत = बेहोश। प्रतीत = विश्वास। आशा = भरोसा। संयोग = मिलन। सरिस = की तरह, जैसा। स्वजन = अपना परिवार, सगे-संबंधी। समेत = सहित। सुधि कर = स्मरण करो, ख्याल करो, याद करो। हेत = के लिए। संकेत = इशारा, निर्देश, सलाह। केवल = सिर्फ, एकमात्र।

भावार्थ—अरे मेरे मन! तुम अब भी तो सतर्क हो जाओ, होश में आ जाओ। देखो तो तुम्हारी क्या-क्या हालत हो चुकी है; (अर्थात् तुम चौरासी लाख प्रकार की योनियों में बहुत बार जन्म-मरण का अपार

दुःख झेले हो) फिर भी लापरवाह हुए बेहोश पड़े (बैठे) हुए हो॥१॥ इस असत्य असार संसार में सुख पाने का विश्वास कर, आज नहीं तो कल की भरोसा, आशा पर आवागमन (जन्म-मरण) का भारी दुःख पा रहे हो॥२॥ जिस शरीर, सम्पत्ति और अपने सगे-संबंधियों (माँ, पिताजी, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री, पौत्रादि) को मेरा-मेरी कहते हो, उनका मिलना तो मानो नदी और नाव के मिलन जैसा है॥३॥ संसार के (जन्म-मरण जैसे अपार) दुःखों से उद्धार पाने के लिए, परम प्रभु सर्वेश्वर की अनुकम्पा से तुम्हें जो बहुत ही सुनहला मौका मिला हुआ था, उस बीते हुए जीवन समय, अवसर, मौके को याद कर, ख्याल करो॥४॥ संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि इस जीवन के बादवाला जो तुम्हारा जीवन है, वो आगे का बड़ा लम्बा अनंतकाल वाला जीवन है, ऐसे अनंतकाल वाले लम्बे जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिए, सुखी बनाने के लिए, सार्थक करने के लिए एकमात्र संत गुरुदेवजी का सदुपदेश, आदेश, निर्देश की ही जरूरत है॥५॥

(५)

सुनो गुरुदेव जू मेरे, पतित यह दास तेरा है।
गहा जब से शरण तेरा नहीं औरों को हेरा है॥
पुकारा जब कभी गुरुवर तुम्हीं को ही पुकारा है।
गुरु मैं सत्य कहता हूँ, हमारा तूँ ही सहारा है॥
तुम्हारे ही दया के दान, से मेरा भला होगा।
लगन को पार यह नैया, गुरु एक आश तेरा है॥
भरोसे मैं तुम्हारे हूँ, जो चाहो सो करो गुरुवर।
तुम्हें तजि और ढूँढ़न को, न दिल में मैं विचारा है॥
गुरु मैं जानता यों हूँ, कि तू सर्वज्ञ समरथ हो।
पुकारा प्रेम से जिसने, (उसका) हुआ नैया किनारा है॥
करूँ गुरुदेव मैं विनती, नहीं इसकी मुझे युगती।
करो पूरन मेरी भक्ती, गुरु 'शाही' तुम्हारा है॥

शब्दार्थ—जू = जी, सरस्वती। पतित = गिरा हुआ, आचारभ्रष्ट,

प्रतिपालक और साक्षात् दया के समुद्र, भंडार ही हैं। हे प्रभु! मेरे ऊपर आप अपनी कृपा कटाक्षभरी दृष्टि डाल दें, दया कर दें। संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि आपकी अनुकम्पा के बिना संसार-सागर से उद्धार हो जाय, जीवन नैया संसार-समुद्र से पार हो जाए, ऐसा मेरे हृदय में विश्वास ही नहीं है। अर्थात् आपकी दया के बिना किन्हीं का भी उद्धार हो जाना बिल्कुल संभव नहीं है॥

(७)

नहीं था कोई पूछनहार।
जब से दया भई सतगुरु की, लगे रहत दो चार॥
थी लाचारी अन्न-वस्त्र अरु, रहने के घर-द्वार।
अब तो तव प्रसाद सद्गुरु कुछ, पावत दीन सहार॥
था ऐसा नहीं जगह जहाँ मैं, जा पाता आधार।
अब तो तव प्रसाद जहँ जाता, मातु-पिता सम प्यार॥
जग में जो कुछ चाहिय जैसा, सुख सुविधा स्त्रोकार।
तुम्हरी दया सुलभ भई मोको, हे गुरु परम उदार॥
अब तो बात रही बाकी जो, जीवन कारज सार।
वह अपनी अनपायनी भक्ति दे, 'शाही' जन्म सुधार॥

शब्दार्थ–पूछनहार = पूछनेवाला, खोज करनेवाला, लाचारी = कमी। तव = आपका, आपकी। प्रसाद = कृपा, दया, अनुकम्पा। सहार = सहारा, मदद। स्त्रोकार = वास्ते, मतलब भर, आवश्यकतानुसार। मोको = मुझे। कारज सार = सार कार्य, सार काम। अनपायनी = मोक्ष प्रदायिनी, अविरल, अचल। सुधार = सार्थक, सफल।

भावार्थ–हे मेरे संत सद्गुरु महाराज मुझे तो कोई भी पूछनेवाला नहीं था। जबसे मुझपर आपकी दया हो गयी, तब से दो-चार लोग हर वक्त लगे रहते। अन्न-कपड़े एवं घर-द्वार की बड़ी कमी, लाचारी थी। अब तो आपकी ऐसी अनुकम्पा हो गयी, जिस तरह दरिद्र आदमी को कोई मजबूत सहारा प्राप्त हो जाए॥ ऐसा मेरे पास कोई आधार नहीं था, माध्यम नहीं था कि मैं कहीं जा पाता।

अब तो आपकी कृपा से मैं जहाँ भी जाता, वहीं मुझे माँ-पिताजी के प्यार जैसी सुव्यवस्था हो जाती॥ संसार में मेरे वास्ते जैसी सुख-सुविधा होनी चाहिए, हे मेरे परम उदार गुरुदेव! आपकी दया से मुझे सब सुलभ हो गयी। संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि अब जो जीवन के लिए सार काम है, वही बाकी रह गया है, पड़ा हुआ है। उस सार काम के लिए मुझे अपनी मोक्ष-प्रदायिनी, अविरल, अचल भक्ति प्रदान करके इस जन्म को सुधार दें, सफल बना दें॥

(८)

गुरुदेव तेरा जीना, जबतक जहान में हो।
होकर तुम्हारा जीऊँ, यह दिल वो जान में हो॥
हरदम रहूँ तुम्हारे, उपदेश के सहारे।
तुम्हारे गुणों का गायन, हरदम जबान में हो॥
तुव नाम का निरन्तर, सुमिरन किया करूँ मैं।
दर्शन तुम्हारा हमको, हर दम धियान में हो॥
इस आँख से भी देखूँ, दिवि दृष्टि से भी पेखूँ।
'शाही' विशेष दर्शन, आतम गियान में हो॥

शब्दार्थ–जहान = संसार, दुनिया। जान = प्राण, जीवन। जबान = मुख। निरंतर = हमेशा। धियान = ध्यान। पेखूँ = देखूँ। विशेष दर्शन = आत्मदर्शन, निज की पहचान। गियान = ज्ञान, आत्मज्ञान।

भावार्थ–हे मेरे गुरुदेव संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज ! मुझे संसार में जबतक जीवित रहना हो, मैं एक मात्र आपका ही होकर जीऊँ, ऐसी बात, ऐसी भावना मेरे हृदय और प्राण में हो॥ मैं हर वक्त प्रत्येक साँस में आपके ही उपदेश के सहारे रहूँ। हर वक्त आपके गुणों को गाता रहूँ। हर क्षण मैं आपके नाम का स्मरण, जप करता रहूँ। आपका दर्शन हमें हर समय ध्यान में होता रहे॥ मैं आपको इस आँख से भी तो देखूँ ही, दिव्य दृष्टि से भी देखूँ। संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि हे गुरु महाराज! मुझे आपका विशेष रूप से आत्म ज्ञान हो जाए, ऐसी ही

भावार्थ—अमरधाम, सतधाम में निवास करनेवाले हे मेरे गुरुदेव संत सद्गुरु महाराज! मेरी प्रार्थना सुन लेने की कृपा करें। मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूँ।टेक॥ मेरी जीवनरूपी नौका संसार-समुद्र में युगों से पड़ी हुई है। इसकी पतवार सँभालनेवाले, पार लगानेवाले कुशल नाविक कोई नहीं है। हे गुरु महाराज! सामने बड़ा ही जबर्दस्त घनघोर अंधकाररूपी काला-काला बादल छाया हुआ है कि कोई भी ओर-छोर का पता नहीं नहीं चलता॥ चारो दिशाओं की बड़ी ही तेज हवा से नैया डगमग-डगमग कर रही है। उसपर काम, क्रोध, मद, लोभ आदि विकार बैठकर झकझोर रहा है, जोरों से हिला रहा है, मानो संसार समुद्र में डुबा देना चाहता है, सर्वनाश ही कर देना चाहता है। मुझे तो पाँचों विषयों (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द) की भारी बीमारी निगली हुई है, विषयों की भारी बीमारीरूपी मुख में मैं पड़ा हुआ हूँ, जिससे मेरा बल और बुद्धि कुछ भी काम नहीं कर पाती है। दिन-प्रतिदिन और बिगड़ती जा रही है, दूषित होती जा रही है, क्षति की ओर जा रही है। संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि हे गुरु महाराज! आप तो असहायों, दीनों, आश्रयहीन व्यक्ति की विपत्ति को विध्वंश करनेवाले हैं, मैं आपकी शरण में आया हूँ, अब आप अपनी मर्जी से जो चाहें, सो करें। गुरुदेव! मुझे तो लगता है कि आपकी अनुकम्पा बिना यह सुनहला (मानव शरीररूपी) अवसर हाथ से कहीं खो तो नहीं जाएगा, मानो संसार से इस बार की बाजी (जीत) हाथ से निकल रही है। गुरुदेव मेरी इस करारी हार से रक्षा करें, रक्षा करें, रक्षा करें।

(११)

मनुज में मानवता का मोल।
मानवताविहीन प्राणी ढोता, मानव का खोल॥
माटी के बहु भाँति खिलौने, खेलत बाल किलोल।
है अंतर केवल आकृति का, देखो हिय में तोल॥
मानव अरु दानव की आकृति, है दोनों सम तोल।
प्रकृति भेद बस दो कहलावत, देखो पोथी खोल॥
मानवता सुख शांति प्रदायिनि, कर जीवन अनमोल।

पर आश्रित सद्गुरु-कृपा पर, 'शाही' कह दे ढोल॥

शब्दार्थ—मनुज = मनुष्य। मानवता = सज्जनता, अच्छा स्वभाव, व्यवहारवाला आदमी। मोल = कीमत, महत्त्व, विशेषता। विहीन = रहित। प्राणी = व्यक्ति, जीव-जन्तु। खोल = आवरण। ढोता = अपने ऊपर लादकर चलना। माटी = मिट्टी। बहु = बहुत। भाँति = तरह, प्रकार। किलोल = खेलने में मस्त रहना, मशगूल रहना। आकृति = रूप, आकार। हिय = हृदय। तोल = मूल्यांकन, ठीक-ठीक विचार-विमर्श करना। सम = बराबर, समान। पोथी = सद्ग्रंथ। प्रदायिनि = देनेवाली, प्रदान करनेवाली। आश्रित = निर्भर, अवलंबित। ढोल = जोरदार शब्द।

भावार्थ—मनुष्य में सज्जनता, अच्छा व्यवहार; एक-दूसरे के प्रति सुमधुर व्यवहारवाले का ही तो महत्त्व है, कीमत है। जिस व्यक्ति में अच्छाई, सद्विचार का अभाव है, वैसे लोग सिर्फ अपने ऊपर मानव का आवरण ढोता चला आ रहा है। जिस तरह बच्चे मिट्टी के विभिन्न प्रकार के खिलौने के साथ बाल-विनोद, खेल में मशगूल रहते हैं। दोनों की सिर्फ बाहरी बनावट में भिन्नता है, हृदय में अच्छी तरह विचारकर देखो॥ मनुष्य और दानव की बनावट में कोई भिन्नता नहीं है, बल्कि बाहर से दोनों समान हैं। अंदर के स्वभाववश दोनों दो कहलाते हैं, धर्मशास्त्र भी इनके साक्षी है। सद्ग्रंथों का भी यही विचार है। इस मानव शरीररूपी अनमोल जीवन के लिए सज्जनता ही सुख-शांति प्रदान करनेवाली है। संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि यह जो मानवता है, संत सद्गुरु की अनुकम्पा पर (संत सद्गुरु की सद्शिक्षा-दीक्षा, उपदेश, आदेश, निर्देश की सच्ची निष्ठा, अचल श्रद्धा-प्रेम के साथ लग्नशील होकर अनुपालन करने में) अवलंबित है, निर्भर करता है। सबों को यह संदेश जोरदार शब्दों में ढोल पीट-पीटकर सुना दो॥

(१२)

उन्हीं को मानवता कहते।
जिनमें पर दुख टीस मारता, सुखी देख खिलते॥
दया दीनता और शीलता, क्षमा भाव गहते।

में चलती हुई विविध प्रकारों की बजती हुई अनहद ध्वनियाँ सुनती है।। संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि शब्द महल में ऐसी ध्वनि जो संतों की वाणी में सारशब्द, सतशब्द, आदिनाम कहलाती है, संसार-समुद्र से पार ले जानेवाली है। इस ब्रह्मध्वनि में तभी सुरत लगती है, जब कोई भाग्यवान भक्त संत सद्गुरु के आदेश, उपदेश, निर्देश के अंदर रहकर अत्यन्त अनुराग से नित्य सत्संग, दृढ़ ध्यानाभ्यास एवं सदाचार, शुच्याचार का कठोरतापूर्वक पालन करने में संलग्न रहते हैं।।

(१४)

भजो रे मन संत चरण सुखदाई ।।टेक।।
संत चरण है नाव तरन को भव वारिधि दुखदाई ।
उनके चरण शरण होइ बैठो, भव दुख जाय नसाई ।।
यश ऐश्वर्य मुक्ति और भलपन, बुद्धि और चतुराई ।
औरों जो कुछ जाहि मिले, जब संत कृपा तें पाई ।।
परमातम साकार संत हैं, यह गुरु ज्ञान बताई ।
नहिं कछु भेद संत भगवन्तहिं, वेद पुरानहु गाई ।।
अगम अगाध संत की महिमा, को अस है जो गाई ।
ब्रह्मा विष्णु महेश शारदा, यहु जन गये लजाई ।।
संत की महिमा संतहि जानैं, और नेति कहि गाई ।
तातें 'शाही' जानि परम हित, रहहु संत सरनाई ।।

शब्दार्थ—भजो = सेवा करो, भजन करो। सुखदाई = सुख-शांति प्रदान करनेवाले। वारिधि = समुद्र। नसाई = समाप्त होगा। यश = प्रतिष्ठा, बड़प्पन, कीर्ति। ऐश्वर्य = ईश्वरता, धन-वैभव, अणिमादि सिद्धियाँ। मुक्ति = छुटकारा, समस्त दुःखों से छुट्टी। भलपन = सर्व सद्गुण सम्पन्न। लजाई = शर्मा गये। नेति = इतना ही नहीं। परमहित = सबसे बड़ी भलाई। सरनाई = शरण में।

भावार्थ—ऐ मेरे मन संत चरणों की सेवा कर, इसी में सुख-शांति निहित है।टेक।। अर्थात् संत सद्गुरु के उपदेश, उनकी सद्शिक्षा दीक्षा का अनुपालन सर्व समर्पण भाव से कर अपने

अनमोल जीवन को आनंदमय बनाओ।। संत-चरण ही दुस्तर संसार-समुद्र से उबारने व पार लगानेवाली नौका है। यदि संसार के दुःखों को समाप्त करना चाहते हो, तो उन्हीं के चरणों की शरण में बैठना, अवस्थित हो जा।। कीर्ति, बड़ाई, प्रतिष्ठा व प्रशंसा, समस्त धन-वैभव, मोक्ष, जन्म-मृत्यु का सबसे भारी दुःखों का सदा के लिए अंत, सर्वसद्गुण सम्पन्न, बुद्धि, सुमति एवं चतुराई के साथ-साथ और भी जो कुछ जिन्हें जब भी शुभ गुण, सुख के साधन की प्राप्ति हुई है, उन्हें संत की अनुकम्पा से ही उपलब्ध हुए।। संत परम प्रभु परमात्मा का साक्षात् साकार रूप है, यह गुरु महाराज के ज्ञान से जानने में आता है। संत और परमात्मा में कुछ भी अंतर नहीं है, ऐसा वेद और पुराण भी साक्षी देता है।। संत की महत्ता जानने से बाहर, अथाह और अपार है, इनकी महिमा का पूरा-पूरा वर्णन भला कौन कर सकता? अर्थात् कोई नहीं कर सकता। भगवान ब्रह्माजी, विष्णुजी और देवाधिदेव महादेव भगवान शंकरजी, विद्या की अधिष्ठात्री देवी भगवती सरस्वतीजी—ये सब भी संत की महिमा को गाकर पूरा कर देने में अपने को सक्षम नहीं पाते, बल्कि लजा जाते हैं। संत की महिमा संत ही जानते हैं और अनंत कहकर गाया करते। इसीलिए संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि अपनी सबसे बड़ी भलाई, कल्याण जानकर संत सद्गुरु की ही शरण में रहो।

(१५)

चेत मन जात अवधि है बीती ।।टेक।।
लख चौरासी योनि भरमि करि, तन पायो सुपुनीती ।
ऐसो नरतन पाय हाय क्यों, भजत न मायातीती ।।
तू जो उरझे विषय बाग में, सुख की करि परतीती ।
ऐसा ख्याल त्याग मन मूरख, यह बुद्धी विपरीती ।।
करि सत्संग ज्ञान खंजर लै, षट् रिपु कै करु ईती ।
अरु जप ध्यान दृष्टि करु योगा, कहे गुरु के रीती ।।
याही सेवा मायापति के, करु हे मन सह प्रीती ।
'शाही' बड़े भाग हैं उनके, भजते मायातीती ।।

आपको प्रतिष्ठित कर लिया। उसका जीवन सार्थक हो गया, सफल हो गया, मानो उन्होंने ही मानव शरीर पाने का सबसे बड़ा फल मोक्ष प्राप्त कर लिया। देर अब किस बात की, तुम भी आलस्य त्यागो, गुरु महाराज की सद्युक्ति प्राप्त कर जन्म-मृत्यु (महादुःख) से छुटकारा पा लो। क्योंकि परम प्रभु परमात्मा को छोड़कर संसार से अपना संबंध जोड़कर मशगूल हो गये हो॥ संत सद्गुरु की सद्शिक्षा-दीक्षा के मुताबिक प्रभु नाम जपो, नाम संबंधी स्थूल रूप का ध्यान करके मन को बाह्य संसार से मोड़कर अंतर्मुख हो जा, मनोयोगपूर्वक एक विन्दु पर दोनों दृष्टिधारों को जोड़ो। अत्यन्त सुंदर ज्योति, अलौकिक प्रकाश जगाकर ब्रह्मध्वनि पा लो॥ संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि ये संत वचनामृत मैंने संत सद्गुरु महाराज की अनुकम्पा ही से जाना है। जो अपनी भलाई चाहे, कल्याण चाहे, जीव के चौरासी लाख प्रकार की देहों में जन्म और मरण जैसे सबसे बड़े कष्टों को मिटा देना चाहे,तो इन संतवाणी पर अत्यन्त अटल श्रद्धा और प्रेम के साथ अपने को चलाना चाहिए॥

(१७)

यही है जीवों की माँग।
दुख छूटै सुख मिलै शांतिमय, नित्य ज्ञान से लाग॥
पर सुख ढूँढै जीव इन्द्रिय संग, पंच विषयन के बाग।
जाहि सुहाइ याहि इन्द्रिन कूँ, सोइ सुख समुझ न लाग॥
इन्द्रिय सुख है दुख विहीन नहिं, जैसे सावन साग।
तातें सत जन देत सिखावन, विषय जहर सम त्याग॥
सच्चा सुख आतम अनुभव है, सो पावै जो जाग।
श्री गुरुदेव चरण-पंकज में, करि 'शाही' अनुराग॥

शब्दार्थ—जीवों = प्राणियों, चेतन आत्मा। माँग = कामना, इच्छा, चाहना, मनोरथ। नित्य = सत्य, अमर, अविनाशी। लाग = लग जा। सुहाइ = सुहावे, अच्छा लगे। बाग = बगीचा, वाटिका। याहि = इन, इस। विहीन = रहित। सिखावन = सीख, शिक्षा। जहर = विष। जाग = उठो, जागो। अनुराग = प्रेम।

भावार्थ—सभी प्राणियों की यही चाहना है कि शांतिमय सुख की प्राप्ति हो जाए और सदा के लिए दुःखों का नाश हो जाए, इसके लिए उन्हें शाश्वत, अविनाशी परम प्रभु सर्वेश्वर की प्राप्ति वाले सद्ज्ञान में लग जाना चाहिए॥ परन्तु जीव इन्द्रियों (आँख, कान, नासिका, जिह्वा, त्वचा, मुँह, हाथ, पैर, गुदा, लिंग, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) के संग रहकर पाँचो विषयों (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द) की वाटिका में सुख ढूँढ़ता। इन इन्द्रियों को जो अच्छा लगता है, उसे ही सुख समझकर उसके पीछे मत लगो। चूँकि इन्द्रियों को सुहानेवाला जो सुख है, वह दुःखमिश्रित है (परम पूज्यपाद संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कभी-कभी प्रसंगवश कहा करते हैं कि संसार का सुख यदि सरसों के बराबर है, तो सोच लो उसके पीछे हिमालय पर्वत जैसा विशाल दुःख लगा रहता है।) जिस तरह सावन महीने की साग दुःखद है। इसलिए संत जन उपदेश देते हैं कि विषयों को विष की तरह त्याग दो॥ सच्चा सुख तो आत्मा को अनुभव करके पहचान लेने में है, उसे (आत्मा) को तो वही पहचान पाते, जो जाग जाता है अर्थात् संत सद्गुरु के प्यारे शिष्य अपने गुरुदेव के सद्ज्ञानानुकूल अत्यन्त अनुराग से अभ्यास कर अंतर के अंधकार को पार कर ब्रह्मज्योति और ब्रह्मध्वनि में अपने आपको प्रतिष्ठित कर लेते हैं। संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि ऐसे भक्तों को चाहिए कि संत सद्गुरुदेव के चरणारविन्द में अति अटल श्रद्धा और विश्वास के साथ प्रेम करे॥

(१८)

बबुआ ऊठ देख कबके भइल बिहान बा।
आलस में बड़ि हानि बा॥टेक॥
दिन बहुते गइल बीत, तोहरा सूतले अचीत।
जान आज के दिन के आजे भर परिमान बा॥आलस में०॥
अइसन अवसर खोई, जनि होहू भव बटोही।
तब के आँसू पोंछे वाला न जहान बा॥आलस में०॥
सुन-समझ संत बानी, कर आपन हित जानी।

(२०)

हमें सतगुरु शरण दीजै, नहीं कोई सहारा है।
पड़ी भव-भँवर में नैया का, केवल तू सहारा है ॥१॥
जगत में कहने वाले यों, घनेरो मैं तुम्हारा हूँ।
मगर हिय हेरकर देखा, सभी धोखा पसारा है ॥२॥
उबारो जनि करो देरी, विरद को याद कर अपने।
समय के साथ बढ़ता जा रहा, धड़कन हमारा है ॥३॥
तुम्हारा है हुआ आना यहाँ, सतधाम को तजकर।
हमारे ही लिये आकर, हमें कैसे बिसारा है ॥४॥
बढ़ा अजानु भुज दोनों, प्रकाश अरु शब्द का मुझको।
लगा लो अपने चरणों में, प्रभू 'शाही' तुम्हारा है ॥५॥

शब्दार्थ—भँवर = अत्यन्त खतरनाक चक्करदार, घुमावदार डुबा देनेवाली जल की तेजधारा। किनारा = मंजिल। घनेरों = बहुतों। हिय = हृदय में, मन में। हेरकर = खूब विचारकर, जाँच-पड़ताल कर। पसारा = फैला हुआ, माया जाल। विरद = संकल्प, स्वभाव, प्रण, प्रतिज्ञा। सतधाम = सत्यलोक, अमर अविचल स्थान। बिसारा = भूला दिये। आजानु = लम्बा, घुटने तक लंबे। भुज = हाथ।

भावार्थ—हे मेरे गुरुदेव सद्गुरु महाराज! आप कृपा कर मुझे अपनी शरण देने की दया करें। चूँकि आपकी शरण के अलावे मेरा और दूसरा कोई सहारा नहीं है। मेरी जीवन नैया संसाररूपी बहुत ही विषम, अत्यन्त खतरनाक चक्कर, घुमावदार, डुबा देनेवाली तेज जलधारा में पड़ी हुई है, मेरी इस डूबती हुई जीवन नौका के लिए सिर्फ आप ही मंजिल हैं॥ इस कठिन परिस्थिति में, यों तो दुनिया में बहुतों यह कहनेवाले हैं कि मैं ही तुम्हारा हितैषी हूँ; परन्तु हृदय में मैंने ठीक-ठीक जाँच-पड़ताल कर, खूब विचारकर खोजा, तो सब-के-सब धोखा मात्र, मायाजाल ही मिले॥ हे गुरुदेव! आप अपनी प्रतिज्ञा, अपने स्वभाव, अपने संकल्प को याद कर, स्मरण कर मेरा उद्धार कर देने की अनुकम्पा करें, अब और देर न लगाएँ। ज्यों-ज्यों समय बीतता जा रहा है, त्यों-त्यों मुझे अपनी जीवन नैया

दुस्तर संसार समुद्र में डूब जाने की आशंका, भय भी बढ़ता जा रहा है॥ आपका तो मेरे ही उद्धार के लिए अपना अमरधाम को त्यागकर यहाँ पधारना हुआ है। मेरे वास्ते आकर किस वजह मुझपर आप अपनी दयामय निगाह हटा लिये हैं॥ हे मेरे आजानुभुज गुरु महाराज! आपके चरणारविन्द में मेरी बारंबार प्रार्थना है कि आप अपने प्रकाश और शब्दरूपी बहुत ही लंबी भुजा मेरी ओर बढ़ा दें और अपने चरण-शरण में मुझे लगा लेने की कृपा करें। चूँकि हे संत सद्गुरु महाराज! यह जो अंतर्ज्योति एवं अंतर्नादरूपी आपके वरदहस्त के बीच जो भक्त आ जाता है, वह उसी तरह निर्भय हो जाता है, जिस तरह कोई बच्चा अपनी माँ-बाप की गोद पाकर निर्भय हो जाता है। माँ-बाप की गोद से बच्चा गिर भी जाता है; परन्तु आपके दोनों हाथों के बीच से जीव कभी नहीं गिर सकता, परमाराध्य संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहा करते थे कि ऐसे भक्त के ऊपर अब बमगोला क्यों न गिर जाय—'ना पल बिछुड़े पिया हमसे, ना हम बिछुड़ें प्यारे से।' संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि हे परम प्रभु परमात्मा मेरे गुरुदेव! मैं आपका ही हूँ, मुझे अपने चरण-शरण में ले लेने की कृपा करें॥

(२१)

हरि तुम नर तन दे क्या कीन्हों।
जौं नहिं मानवता अति उत्तम, मोहि कृपा करि दीन्हों॥
तन नर अरु स्वभाव सूकर का, मेल नहीं यह नीका।
अति सुन्दर यह सृष्टि तुम्हारी, है इतनहिं से फीका॥
करहु कृपा दीजै मानवता, तुम्हरी सृष्टि सजेगी।
साथहि साथ कृपानिधान, मेरी भी बात बनेगी॥
सुनहु दयामय तब प्रसाद, 'शाही' का जीवन धन्य हो।
पद सरोज मकरन्द मधुप इव, पी पुलकित तन मन हो॥

शब्दार्थ—कीन्हों = किये। अति उत्तम = अत्यन्त सुंदर। तन = शरीर। नीका = सुन्दर, अच्छा, ठीक। सृष्टि = रचना, संसार। सजेगी = सुशोभित होगी, शोभायमान होगा। बात बनेगी = काम बन

विरही, सर्वेश्वर के वियोग में भीतर से बड़े व्याकुल रहते हैं॥ आपकी महिमा की ऐसी विचित्र, न्यारी कहानी है कि समझने में बहुत अच्छी लगती है; लेकिन वर्णन से बाहर है। मैं तो मन-ही-मन अत्यन्त मगन हूँ, प्रसन्न हूँ॥ हे गुरुदेव! आप पूरी धरती पर धन्य हैं॥ समस्त भूमंडल पर जिसका कोई सहारा देनेवाले नहीं, सहयोग करनेवाले नहीं, दुःख दूर करनेवाले नहीं अर्थात् जो हर तरह से सबों से ठुकराया हुआ है, ऐसे भी असहायों को अपनी शरण में ले लेनेवाले, अपना लेनेवाले आपही मेरे गुरुदेव हैं। संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि मेरे तो हे गुरुदेव! आप माँ-पिताजी ही हैं॥ हे गुरु महाराज आप धन्य हैं, धन्य हैं, धन्य हैं, आप धन्य हैं, पूरी वसुन्धरा पर आप धन्य हैं॥

(२३)

तुम्हरी ही कृपा पै टिके हम हैं,
नहीं तो मेरा सहारा कहाँ जग में।
है तुम्हारा विरद अधमोद्धारन,
नहीं तो मेरा उबारा कहाँ जग में॥
असहाय भटकता फिरता यों,
लावारिश कूकर सूकर ज्यों।
गहकर मेरा बाँह सनाथ किया,
नहीं तो मेरा पुछारा कहाँ जग में॥
अति स्नेह सहित अपना करके,
हृदय से मुझे लगा करके।
संतों का ज्ञान सिखाया मुझे,
नहीं तो मेरा सुधारा कहाँ जग में॥
सब भाँति सदा से तूने ज्यों,
मेरा सब सार सम्हाल किया।
त्यों आगे भी पार लगा देना,
नहीं तो 'शाही' का किनारा कहाँ जग में॥

शब्दार्थ—पै = पर। टिके = स्थिर है। अधमोद्धारन = पापियों

का कल्याण करनेवाले, साक्षात् प्रभु। विरद = प्रतिज्ञा, संकल्प, प्रण। उबारा = उद्धार होनेवाला। लावारिश = निःसहाय, बेसहारा। ज्यों = की तरह। गहकर = शरण में लेकर। सनाथ = हृदय से अपनाए, प्यार दिये, सँभाल किये। पुछारा = पूछनेवाला। सुधारा = सुधार। त्यों = उसी तरह। किनारा = मंजिल, स्थायी सुख-शांति।

भावार्थ—हे मेरे गुरु महाराज! आपकी ही अनुकम्पा पर मैं स्थिर हूँ, नहीं तो संसार में मेरा कोई सहारा नहीं है। यदि पापियों, अत्यन्त गिरे हुए का कल्याण करना आपका स्वभाव, आपकी प्रतिज्ञा नहीं रहती, तो भला मेरा संसार में कहाँ कल्याण होता? मेरा कहीं भी उद्धार होनेवाला नहीं, यों ही भटकते-फिरते निःसहाय कुत्ते, सूअर सम मेरे पशुवत् जीवन (बहिर्मुखता) से मेरी बाँह पकड़ अपनी शरण में ले लिए (कृपा करके अंतर्मुखी बनाए), मानो मुझ अनाथ को सनाथ कर दिये, नहीं तो संसार में मुझे कौन पूछता॥ हे मेरे गुरुवर! अत्यन्त प्यार के साथ मुझे अपनाकर तथा हृदय से लगाकर (चूँकि परमाराध्य प्रातःस्मरणीय अनंत श्रीविभूषित संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते थे कि 'शाही स्वामी मेरे हृदय हैं।') यदि मुझे संतों का अमृतमय सद्ज्ञान नहीं सिखाये होते, तो इस संसार में मेरी सुधार असंभव ही था॥ जिस प्रकार हर तरह सदा से मेरा सार सम्भाल किये। उसी तरह आगे भविष्य में भी हे गुरुदेव! पार लगा देने की कृपा करेंगे। संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि नहीं तो मेरी जीवन नैया संसार-समुद्र से किनारा लगना, पार लगना असंभव ही है॥

(२४)

झट लिपटो रे प्यारे गुरु के चरण में, सब सुख उनहीं माहिं ॥टेक॥
गुरु के चरण में जाकर मन रमें, भाग बड़ो अति ताहि।
छूटत प्यारे हो, भव कर दुख सारे, काल के दाल गले नाहिं॥
तन मन धन सब, गुरु के चरण पर, जो रे अरपि हरषाहिं।
पालि वचन दृढ़, गुरु को शीश धरि, मन ही मन पुलकाहिं॥
गुरु की कृपा प्यारे, सिधि शुभ गति सारे, जानि चरण लिपटाहिं।

मुझे दूसरी जगह कहीं भी नहीं जाना है, चाहे आप मेरी ओर अपनी नजर डालें या नहीं डाले॥१॥ मैं पूरी दुनिया से परेशान हो, थककर, हारकर आया और हृदय से खूब सोच-विचारकर, ढूँढ़कर आपकी शरणागति प्राप्त की, आपके उपदेशों को सस्नेह जीवन में उतारना प्रारंभ किया। आप पर ही मेरी मर्यादा, गौरव है, अब मेरी प्रतिष्ठा रखें या न रखें॥२॥ हे संत सद्गुरु मेरे गुरु महाराज! आप ही भारी पापियों, गिरे हुए का कल्याण करनेवाले, उद्धार करनेवाले साक्षात् परम प्रभु सर्वेश्वर ही हैं, आप तो सबके अंतःकरण, मन की सारी भावनाओं को जाननेवाले हैं यह बात तो सबको जानकारी है ही, भले ही आप प्रत्यक्ष रूप से कहें या न कहें॥३॥ आपकी प्रतिज्ञा, संकल्प ऐसा है कि चाहे कैसा भी गिरा हुआ, पापी व्यक्ति हो, उसकी जीवन नैया संसार-समुद्र से पार लगाकर ही छोड़ते, अब आप यह अपनी प्रतिज्ञा रखें या न रखें॥४॥ संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि मैं चाहे अच्छा हूँ या खराब हूँ, जैसा भी हूँ; परन्तु दुनिया तो यही जानती है कि शाही के गुरुदेव 'महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज' ही हैं, भले आप मेरी ओर दयाभरी निगाह डालें या न डालें॥५॥

(२६)

मेरे मुरशिद सुनो, मेरे रहबर सुनो, दास्ताना।
तेरा जाना चमन का वीराना ॥टेक॥
यहाँ खिलते थे गुल हाय! कैसे, कैसा रौनक बहारें थीं कैसी।
लेकिन अब तो वही कोई रौनक नहीं, सुनसाना ॥ तेरा०॥
तेरा दीदार क्या ही अजब था, निगाह जिसका पड़ा जैसे जब था।
झूम जाता था मन, तो होता ऐसा अमन, इन्तहाना ॥ तेरा०॥
सुन सुखन तेरा कायल हुआ ना, कहीं ऐसा देखा ना सुना ना।
लाखों की जिन्दगी, बन गई है बंदगी, सुन तराना ॥ तेरा०॥
पाक कदमों का पाकर सहारा, है जिंदगी खैरियत में गुजारा।
अंत में है आरजु 'शाही' की जुस्तजू, ना भुलाना ॥ तेरा०॥

शब्दार्थ—मुरशिद = गुरु। रहबर = राह दिखानेवाले, गुरु।

दास्ताना = हालत, समाचार, स्थिति। चमन = बाग, फुलबाड़ी। वीराना = निर्जन, उजाड़। गुल = फूल, अद्भुत बात, आनंद की बात। रौनक = चमक, चहल-पहल, खूबी। बहारे = शोभा, आनंद। दीदार = दर्शन। अजब = विचित्र, अनोखा। निगा = निगाह, नजर। झूम = लहराना, मस्ती, आनंदित हो जाना। अमन = शांति। इन्तहाना = अंतरहित, सीमा नहीं। सुखन = उपदेश। कायल = माननेवाला। जिन्दगी = जीवन। बन्दगी = प्रार्थना, सेवा, आराधना। तराना = आनंद का गाना। पाक = पवित्र। कदमों = चरणों। खैरियत = कुशल, आनंद। गुजारा = बिताया। आरजू = प्रार्थना। जुस्तजू = इच्छा, चाह।

भावार्थ—हे मेरे गुरु महाराज (प्रातःस्मरणीय परमाराध्य अनंत श्रीविभूषित संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज)! मेरी प्रार्थना कृपाकर सुनें, हे मेरे सत्पथ प्रदर्शक (संसार से परमार्थ की ओर लगानेवाले) गुरुदेव! मेरी दशा, हालत, स्थिति सुन लेने की अनुकम्पा करें। आपका शरीर परित्याग कर परमधाम गमन कर जाना, ब्रह्म में समा जाना, तो मानो समस्त वसुंधरारूपी पुष्पवाटिका का उजाड़ ही हो जाना हो गया॥टेक॥ अफसोस! आपके नये-नये विचित्र-विचित्र चमत्काररूपी पुष्प प्रस्फुटित होते रहते थे। नित्य बहुत ही चहल-पहल के साथ-साथ आनंदमय वातावरण रहता था। लेकिन अब तो बिल्कुल ही चहल-पहल नहीं, बल्कि सुनसान-सा लगता है॥ तेरा जाना०॥ आपका दर्शन बड़ा ही विचित्र था। जब भी जिसकी नजर जिस भी तरह की थी, मन बड़ा आनंदित हो जाता और अनंत-सी शांति महसूस होने लगती थी॥ तेरा जाना०॥ जिन्होंने आपके सदुपदेशामृतरूपी सुरसरी में अवगाहन किया, ऐसा कहीं भी नहीं देखा गया या सुना गया कि वे आपके न हो गए अर्थात् वे सज्जन आपके ही अनुयायी हो गये, आपके ही प्रशंसक बन गये। लाखों का जीवन अर्चनीय-वंदनीय, पूजनीय हो गया, मानो आपके सद्ज्ञान ने ऐसा जादू कर दिया कि सबके-सब आकर्षित हो गये॥ तेरा जाना०॥ हे गुरुदेव! आपके परम पवित्र श्रीचरणों (सदुपदेशों)का सहारा पाकर मैं बड़ा ही आनंदपूर्वक जीवन बिताया। संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि हे गुरुमहाराज! अंत में

साफ कर दो। दोनों आँखों को बंद कर इसके ठीक बीचोबीच सामने दोनों दृष्टि को रखो अर्थात् दोनों नैनों के बीच सामने अंधकार में एकटक से देखो॥ ब्रह्मज्योति और ब्रह्मध्वनि को पकड़कर, परखकर तीनों परदों (अंधकार, प्रकाश और शब्द) के परे चलकर अपनी (जीवात्मा की) पहचान कर और परम प्रभु सर्वेश्वर का साक्षात्कार कर संसार के समस्त दुःखों से छुटकारा पा लो, मुक्ति प्राप्त कर लो, अपने अनंतकाल वाले जीवन को हर तरह से सुखी बना लो॥ संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि इसके लिए सर्वप्रथम खान-पान को सुधारकर (अखाद्य पदार्थ–मांस, मछली, अंडा तथा नशीले पदार्थ–दारू, गाँजा, भांग, अफीम, मदक, कोकीन, ताड़ी, चण्डू, खैनी, बीड़ी, सिगरेट, जर्दा, तम्बाकू आदि का सदा के लिए परित्याग कर दो) अपने को महापापों (झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार) से बचाओ। संत सद्गुरु की संगति कर, सेवा कर, आदर के साथ ध्यान में अपने को लगाओ, प्रतिष्ठित करो अर्थात् दृढ़तापूर्वक मनोयोग से ध्यान करो॥

(२९)

कभी क्या ऐसी रहनि रहूँगा।
श्री गुरुदेव कृपालु कृपा से, साधु स्वभाव गहूँगा॥
षट विकार को जीत पाप, सपनेहु नहिं रंच करूँगा।
सत्य धर्म के पालनार्थ, बाधाएँ सभी सहूँगा॥
सेवा अरु सत्कार प्यार दे, दुश्मन-मन भी हरूँगा।
दुखी दीन को हृदय लगा, मन में अति मोद भरूँगा॥
मान बड़ाई कठिन रोग है, भूलहुँ नहीं बरूँगा।
दया दीनता क्षमा शीलता, दास भाव निबहूँगा॥
सतगुरु सम त्राता नहिं जग में, दृढ़ विश्वास धरूँगा।
'शाही' सब तन मन धन अर्पण, करि भव पार परूँगा॥

शब्दार्थ–रहनि = दिनचर्या, व्यवहार, आचरण। गहूँगा = ग्रहण कर पाऊँगा। कृपालु = कृपा करनेवाले। षट् = छह। रंच = थोड़ा। पालनार्थ = पालन करने में। सत्कार = सम्मान। हरूँगा = आकर्षित करूँगा,

अपना बना पाऊँगा। दीन = बेसहारा। मोद = आनंद। मान = सम्मान पाने की भावना, प्रतिष्ठा पाने की भावना। कठिन = भयंकर, जबर्दस्त। भूलहुँ = भूल से भी। बरूँगा = अपनाऊँगा, धारण करूँगा। दीनता = गरीबी भाव। शीलता = सुचरित्रता, विनयशीलता, विनम्रता। दास भाव = सेवा करने की भावना। निबहूँगा = निर्वाह करूँगा, निभा पाऊँगा। सम = समान। त्राता = रक्षक। धरूँगा = धारण करूँगा, रख पाऊँगा। अर्पण = समर्पण। परूँगा = जा पाऊँगा।

भावार्थ–क्या मेरे जीवन में वैसा समय आएगा, क्या ऐसा जीवन मेरा बन पाएगा, कभी इस प्रकार रह पाऊँगा कि कृपा के समुद्र श्रीसंत सद्गुरु महाराज की अनुकम्पा से सच्चे साधु की तरह छहों विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर) पर विजय प्राप्त कर स्वप्न में भी थोड़ा-सा भी पाप नहीं करूँगा। सत्य जो सबसे बड़ा धर्म है, तप है, इसके पालन करने में, रक्षा करने में चाहे जितनी भी बाधाएँ सामने आये, उन तमाम बाधाओं, विघ्नों को बर्दास्त, सहन कर पाऊँगा? सेवा, सम्मान, सत्कार और प्यार देकर दुश्मनों का भी दिल जीत पाऊँगा, अपना बना पाऊँगा, प्रसन्न कर सकूँगा। बेसहारों, गरीबों, दीन-दुखियों को अपने हृदय से लगा, प्यार देकर मेरा मन अत्यन्त आनंद से प्रफुल्लित होगा? सम्मान, आदर, प्रतिष्ठा और बड़प्पन पाने की भावना बड़ा ही जबर्दस्त, भारी बीमारी है, जिसे मैं भूल से भी नहीं अपनाऊँगा? किसी भी संकटग्रस्त भाग्यहीन के प्रति सहानुभूति प्रकट कर, अर्थहीनता, गरीबी का भाव, क्षमा कर देने, सद्व्यवहार, सुचरित्रता, विनम्रता के साथ-साथ सेवा करने आदि सुंदर-सुंदर सद्भावनाओं का निर्वाह कर पाऊँगा? संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि मैं गुरु महाराजजी (परमाराध्य अनंत श्रीविभूषित संत सद्गुरु महर्षि मँहीँ परमहंसजी महाराज) के चरणारविन्द में अपना सर्वस्व–तन, मन, धन समर्पण करके संसार-समुद्र को पार कर जाऊँगा॥

(३०)

भक्त का हार हृदय का हार।

विषय, बातचीत। कह = कह लो, कहो। कहा = किसी और द्वारा कहवाना। वाह-वाह = प्रशंसा, बहुत अच्छा, धन्य-धन्य। कमाल = निपुणता, कौशल, अद्‌भुत, सर्वोत्तम। ब्राह्मी = ब्रह्म की। वृत्ति = अस्तित्व, रहन-सहन, स्वभाव, वर्ताव। दलाल = मध्यस्थता करनेवाला।

भावार्थ–तुम अपना वेश-भूषा, पहनावा, रंगरूप भले ही विशाल जैसा, विचित्र-सा बना लो, यदि वेश के मुताबिक तुम्हारा श्रेष्ठ विचार, ऊँचा ख्याल नहीं है, तो वो जो तेरा पहनावा है, मानो संसार को धोखा देने का अच्छा-सा साधन है॥ संत सद्‌गुरु जो भी कह लो य दूसरों से कहा लो, यदि वैसा सद्‌व्यवहार, आचार, रहन-सहन नहीं है, तो यह पक्का सोच लो, जान लो कि भीतर से तू तुच्छ भेड़िया जैसा है, सिर्फ अपने ऊपर शेर, सिंह का चमड़ा, आवरण डाल रखा है॥ परम प्रभु सर्वेश्वर के संबंध में कितना भी वर्णन, बड़ी-बड़ी व्याख्या कर लो, दुनिया के लोगों से धन्य हैं, ध न्य हैं, बड़े ही निपुण हैं आदि प्रशंसा पा लो; परन्तु परम प्रभु परमात्मा के विचारानुसार वर्ताव, रहन-सहन के बिना तू यमराज के पास ले जानेवाला मध्यस्थ है, दलाल ही है॥

(३२)

मन तू साधुता उर आन ॥टेक॥
मिटिहैं दुख दर्द भव के, योनि आवन जान।
शान्ति सुख अनुपम अलौकिक, मिलहिं पद निरवान॥
त्यागु लोलुपता विषय की, मान अरु अभिमान।
काम क्रोध विषाद तजि रहु, पाप से अलगान॥
क्षमा शील संतोष उर धरि, भाव समता ठान।
त्याग अरु वैराग्य सेवा, साधु भूषण मान॥
सन्त संग सतगुरु की सेवा, और साधन ध्यान।
बात तीनों जान 'शाही', साधुता का प्रान॥

शब्दार्थ–साधुता = सज्जनता, पवित्रता, सरलता, सदाचारिता, विनयशीलता, व्यवहार कुशलता, सबों के साथ सुमधुर वर्ताव, कर्तव्य कार्यकौशल। उर = हृदय। आन = लाओ। आवन = आना, जन्म।

जान = जाना, मृत्यु। अनुपम = उपमा-रहित, जिसकी बराबरी कोई नहीं। अलौकिक = दिव्य, संसार के परे, पारमार्थिक, स्थायी, सत्य। निरवान = मोक्ष, अविचल धाम, निर्वाण। लोलुपता = लालच, लालसा, कामना। मान = सम्मान, प्रतिष्ठा पाने की भावना। अभिमान = घमंड। विषाद = उदासी भाव, निराशपना। काम = कामना। अलगान = दूर रहना, अलग रहना। शील = विनयशील, सहनशील, सच्चरित्र, सद्‌व्यवहार। भूषण = अलंकार, सजावट, शोभा, शृंगार। मानो = मानो, जान लो। साधन = विधिवत्, युक्ति के मुताबिक। प्रान = साँस, आधार, जान, जीवन।

भावार्थ–अरे मेरे मन! तू अपने अंदर (हृदय में) सद्‌व्यवहार, सज्जनता, विशुद्धता, सरलता, सदाचारिता, विनयशीलता, हर जगह सबों के साथ हरवक्त सुमधुर वर्ताव, कर्तव्य कार्य (एक ईश्वर पर अचल विश्वास, पूर्ण भरोसा अपने अंतर में ही उनकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय रखना, सद्‌गुरु की निष्कपट सेवा, सत्संग और दृढ़ ध्यानाभ्यास) में संलग्नता आदि शुभ-शुभ भावनाओं से लबालब भर लो॥टेक॥ संसार के (जन्म-मरणादि का सबसे बड़ा) समस्त दुःख-दर्द तेरे समाप्त हो जाएँगे, चौरासी लाख की देहों में आना और छोड़ जाना का अंत हो जाएगा। जिसकी बराबरी में कोई नहीं, जो दिव्य पारमार्थिक, स्थायी, अविनाशी सुख-शांति के साथ परम प्रभु सर्वेश्वर का अविचल धाम, मोक्ष, निर्वाण पद की प्राप्ति हो जाएगी। विषय (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द) पाने की लालच, लालसा, प्रतिष्ठा पाने की भावना और घमंड, गुमान, अभिमान का त्याग कर दो अर्थात् इसकी जड़ उखाड़ फेंक डालो। कामना इच्छा, गुस्सा और उदासी भाव, निराशपना का त्याग करते हुए हर वक्त पापों से दूर रहो, बचते रहो, अलग रहो॥ हृदय में सहनशीलता, विनयशीलता तथा थोड़े में भी संतुष्ट रहने आदि उत्तम-उत्तम सद्विचारों को धारण कर, सबों के साथ समान उदार भाव लाने का दृढ़ निश्चय कर लो, संकल्प कर लो। परित्याग, प्राणी-पदार्थों से वैराग्य और सेवा करने की भावना तो सज्जनों, साधु का अलंकार, शृंगार, शोभा ही मानो॥ संत सद्‌गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि संतों की

अहर्निश, उठते-बैठते, सोते-जागते संलग्न रहूँ अर्थात् हर वक्त सदुपदेशों के बीच ही रहूँ॥ मेरा, शरीर, मन, वचन और कर्म पवित्र, परिशुद्ध हो जाए तथा मुझे वैराग्याग्नि अत्यंत प्रज्वलित हो जाए। आपकी अनुकम्पा से मेरे हृदय में साधु-संतों के समस्त सद्गुण निवास कर जाए॥ संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि हे मेरे स्वामी सर्वेश्वर गुरु महाराज! आप अपनी अविरल, अनपायिनी भक्ति देने की कृपा करें। यह भक्ति संसाररूपी नदी पार करने के लिए नाव की तरह है, जिससे जगत् के जन्म-मरण जैसे बेहिसाब दुःखों से त्राण हो जाए, मुक्ति मिल जाए॥

(३५)

मुर्शिद मुझको तुझ पै नाज॥
तू मौला हो गरीब परवर, और गरीब निवाज॥
दर हकीकत हो आजिजों के, तू ही कारज साज॥
तू कामिले मुर्शिद तुम्हारा, एक एक अलफाज॥
करनी धरनी रहनी गहनी, हर हरकत में राज॥
तू रहीम रहमत से तेरे, रूह करे मेराज॥
स्याह सफेद महल के ऊपर, सुनै गैब आवाज॥
आवाज गैब सुन छुटत ऐब, हो फारिग मुहताज॥
हुआ निजात मिला खालिस सुख, पूरा सकल नियाज॥
तू बेनजीर रौनके जहाँ, तेरा इकबाल विराज॥
सदा सलामत मैं भी तुमसे, हे 'शाही' सिरताज॥

शब्दार्थ—मुर्शिद = सीधी राह बतानेवाले, गुरु। पै = पर। नाज = गौरव, अभिमान। मौला = मालिक, ईश्वर। गरीब परवर = गरीबों के पालन करनेवाले, रक्षक। गरीब निवाज = गरीब पर दया करनेवाले, अनुग्रह करनेवाले। दर = में। हकीकत = असलियत, सच्चाई, सच बात। आजिजों = दीन, लाचार, तंग, परेशान, आया हुआ। कारज साज = काम करनेवाले, कार्य सँवारनेवाले। कामिले = पूरे, पहुँचे हुए, योग्य। अलफाज = वचन, शब्द, उपदेश। हर = प्रत्येक, हरेक। हरकत = हिलना-डुलना, गति, चेष्टा। राज = रहस्य। रहीम = दया

करनेवाले, रहम करनेवाले। रहमत = मेहरबानी, दया, अनुग्रह। रूह = जीवात्मा। मेराज = चढ़ाई, तरक्की, ऊपर चढ़ने का साधन। स्याह = काला। सफेद = उजला, प्रकाश। गैब = गुप्त। ऐब = अवगुण, बुराई, दोष। फारिग = निश्चित, कार्य से निवृत्त। मुहताज = दूसरे पर आश्रित, गरीब, जिसे किसी चीज का अभाव हो। निजात = मुक्ति। खालिस = शुद्ध, सच्चा, खरा। नियाज = अच्छा, मनोरथ, आवश्यकता। बेनजीर = बेमिसाल, अनुपम। रौनके जहाँ = संसार की शोभा। इकबाल = महिमा, यश। विराज = छा जाना, सुशोभित हो जाना। सलामत = सुरक्षित, सकुशल। सिरताज = मालिक, स्वामी, सरदार।

भावार्थ—सीधी राह दिखानेवाले हे मेरे गुरुदेव [परमाराध्य अनंत श्रीविभूषित संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज]! आप पर ही मेरा गौरव है, अभिमान है॥ आप साक्षात् परमात्मा हैं, मालिक हैं, दीन-दुखियों, बेसहारों, गरीबों के रक्षक, पालक और दीनों पर अनुग्रह करनेवाले हैं॥ असलियत में तो बात यह है कि हर तरह से जो लाचार हैं, तंग-तंग हैं, ऐसे परेशान व्यक्ति के लिए आप ही समस्त बिगड़े कार्यों को सँवारनेवाले हैं॥ हे मेरे गुरुदेव! आप पूरे, पहुँचे हुए, सच्चे सद्गुरु, परम गुरु हैं, आपके हर शब्दों, वचनों तथा क्रिया-कलापों, गतिविधियों के पीछे गंभीर, अलौकिक रहस्य भरा रहता है॥ आप ही भक्तों पर अनुग्रह, दया करनेवाले हैं, आपकी अनुकम्पा से जीवात्मा अंतर में ऊर्ध्वगमन करने, चढ़ाई करने में सक्षम हो पाता है। अपने ही शरीर के भीतर काली, उजली ज्योति के ऊपर छिपी हुई गुप्त ब्रह्मध्वनि सुनाई पड़ती है॥ अमृतमयी गुप्त परमात्मीय ध्वनि सुनते ही अपने अंदर की सारी बुराई, अवगुण, मैल छूट जाती है, उनका सारा कार्य सम्पन्न हो जाता है, किसी भी चीजों का अभाव नहीं रहता, आत्मनिर्भर हो जाते हैं॥ निर्वाणपद की उपलब्धि हो गयी, सच्चा सुख प्राप्त हो गया, सारी इच्छाएँ पूरी हो गयीं। आपकी बराबरी कोई नहीं कर सकता, आपकी अनुपम महिमा दुनिया में आच्छादित है, सुशोभित है॥ संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि हे मेरे स्वामी, मालिक! मैं भी आपकी अनुकम्पा से हमेशा सुरक्षित हूँ, आनन्दमय हूँ, सकुशल से हूँ॥

सद्गुरु। रहम = अनुकम्पा, दया। सुखन = उपदेश, शिक्षा, बात। खिदमत = सेवा, टहल। कदम = चरण, पाँव। ठानो = दृढ़ निश्चय के साथ करो, तत्परता के साथ करो। इशक = प्रेम, अनुराग, आसक्ति। सिदक = सच्चाई, सत्यता, निष्कपट भाव, निश्छलता, दिल की विशुद्धता। शबाब = धर्म।

भावार्थ—ऐ मेरे मतवाले, लापरवाह मन! तू इस दुनिया, संसार में किस भूल-भुलैया में पड़े हुए कहाँ-कहाँ बेखबर, बिसरे हुए हो। वह कौन-सा अजीब पदार्थ तूने पा लिया, जिस घमंड में इतराये हुए हो॥ संसार का सारा चमक-दमक, नजारा, तमाशा नश्वर है, असत्य है, यही दशा तो इस शरीर की भी है। अभी प्रत्यक्ष जो तुम्हें जीवन मिला हुआ है, वह बहुत थोड़ा है अर्थात् तुम्हारी आयु, जीवनकाल बहुत थोड़ा-सा है॥ तुम उसी तरह धोखे में पड़े हुए हो, जिस तरह बालू-ही-बालू में मृग धोखा खाता है। (रेगिस्तान जहाँ सिर्फ बालू-ही-बालू बहुत दूर तक, विस्तृत रूप से हो, वहाँ रहनेवाला मृग, जब उसे प्यास लगती है, तो बालू पर पड़नेवाली सूर्य की गरम-गरम लपलपाती हुई किरण पानी जैसा ही दिखाई पड़ती है, उसी पानी को पीने के ख्याल से मृग दौड़ता है, परिणाम यह निकलता है कि मृग प्यासा ही मर जाता है)। विश्वास में तो ऐसा ही लगता है कि तुम निश्चित रूप से अपना भाग्य खो रहे हो, डुबा रहे हो॥ मन में, दिल में अफसोस मत करो, शोक मत लाओ, परम प्रभु सर्वेश्वर को ही सच्ची शांति स्वरूप जानो। वह परम प्रभु परमात्मा उन्हें ही मिलते, जो संत सद्गुरु की अनुकम्पा के पात्र हैं॥ अर्थात् संत सद्गुरुदेव की दया में ही प्रभु की प्रीति निहित है॥ संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि संत सद्गुरु महाराज के उपदेश, सिखावन, उनकी सद्शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर ठीक-ठीक मनोयोग के साथ जीवन में अत्यन्त श्रद्धा से पालन करो, उनके चरणारविन्द की सेवा में दृढ़ निश्चयी हो संलग्न रहो। साथ-साथ सच्चाई, ईमानदारी, विशुद्धभाव, निश्छलता और प्रेम का बर्ताव करो, अपने को धर्म में सर्वदा तटस्थ रखो, लगाये रखो॥

(३८)

भजन करना है तो भाँड़ा भरम का,
प्रथम दूर सिर से हटाना पड़ेगा।
इसके लिये संत सतगुरु चरण में,
अटल प्रीति परतीत लाना पड़ेगा॥
मद मान मत्सर ये दुर्गुण हैं जितने,
इन्हें कोस लाखों भगाना पड़ेगा।
सदाचार जग में अलौकिक सुमन है,
हृदय वाटिका को सजाना पड़ेगा॥
जगत का सही रूप दुखमय समझकर,
वैराग्य मन में बढ़ाना पड़ेगा।
उपकार प्रभु के सतत याद कर-कर,
विरह वेदना को बढ़ाना पड़ेगा॥
भक्ती की युक्ति हैं सद्गुरु बताते,
जिसे सीख जीवन को ढाना पड़ेगा।
युक्ती बिना भक्ति 'शाही' न होगी,
चौरासी का चक्कर लगाना पड़ेगा॥

शब्दार्थ—भाँड़ा = मिट्टी का बना हुआ पात्र जिसका फूट जाने का स्वभाव है। भरम = भ्रम, संसार के प्राणी पदार्थ। भजन = भक्ति, ध्यान। संध्या = उपासना, ब्रह्मज्योति और ब्रह्मध्वनि में प्रतिष्ठित होना, योग, प्रभु-प्राप्ति का साधन विशेष के द्वारा साधना करने का प्रयास करना। सिर से हटाना = मन से दूर करना, ख्याल में नहीं लाना। अटल = अविचल। प्रीति = प्रेम, अनुराग। परतीत = विश्वास, सच्ची निष्ठा, श्रद्धा। मद = घमंड, नशा, अभिमान, मान-सम्मान की भावना, आदर-सत्कार की इच्छा। मत्सर = ईर्ष्या, डाह। अलौकिक = दिव्य, अद्भुत, विलक्षण। सुमन = पुष्प, फूल। वाटिका = बगीचा, फुलवाड़ी। सतत = सर्वदा, सदा, हमेशा। विरह = जुदाई, वियोग, अभाव, अविद्यमानता। वेदना = दुःख, पीड़ा, व्यथा। ढाना = ढालना, उतारना।

के बिना, संसार में वैसा विचार, वैसी जानकारी, सद्बुद्धि कहाँ प्राप्त होगी? अर्थात् कहीं भी संभव नहीं। जिस सद्ज्ञान, सद्विचार के आश्रय आकर अपना सबसे बड़ा कल्याण होगा, अनंत सुख की प्राप्ति हो जाएगी। सत्संग में संतवचनामृत रूपी, सद्ज्ञान की सुरसरि (जिस सुन्दर विचार की धारा में डुबकी लगाने से कैसा भी प्राणी परम पूजनीय, विशुद्ध, पवित्र हो जाय) बहती है। उसमें (संत वचनामृतरूपी सद्ज्ञान गंगा में) यदि अपने को नहीं नहलाया, तो स्थायी सुख-शांति की तरफ, उद्धार की ओर जानेवाला सच्चा रास्ता का ठिकाना, ज्ञान कहाँ होगा? मानो सभी दुःखों का हरण करनेवाले परम प्रभु सर्वेश्वर के पाने का ज्ञान नहीं होगा। जन्म-मरण जैसे भयंकर दुःखों से छुटकारा का रास्ता भक्ति है, अंतःप्रकाश और अंतर्नाद की प्राप्ति है, जो संत सद्गुरु द्वारा प्राप्त विधिवत् प्रक्रिया, साधन विशेष के बिना नहीं हो पाती। सद्युक्ति से ध्यान-भजन यदि नहीं किया, तो सिर्फ मनमाने ढंग से पूजा-पाठ, आराधना किया, तो संसार-समुद्र से उद्धार, कल्याण हरगिज नहीं होगा, भव-सागर में जीवन-नैया डूबने से बच नहीं सकती, आवागमन का महादुःख लगा रहेगा। सेवा करने से उत्तम-उत्तम, सुन्दर-सुन्दर कल्याणकारी गुणों का अपने अंदर आविर्भाव होता है, जिससे जीवन आनंदमय हो जाता है। संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि जिसके अंदर सेवा करने की भावना नहीं है, उन्हें जीवन में सुख-शान्ति कतइ संभव नहीं है अर्थात् उनके जीवन में सदा अशान्ति, परेशानी लगी रहेगी।

(४०)

मान मान मन यह तन तेरा, हीरा रतन अनमोल है।
विषयों के पीछे पड़ पगले, कर रहा माटी मोल है ॥१॥
राम कृष्ण अरु ऋषि मुनियों ने, इसकी महिमा गायी है।
वेद पुराण आदि ग्रंथों में इसकी लिखी बड़ाई है॥
कलयुग के भी संत हैं जितने, सबका एक ही बोल है।
विषयों के पीछे पड़ पगले, कर रहा माटी मोल है ॥२॥
ऐसा यह अनमोल रतन तन, प्रभु ने तुमको है दिया।

इसको पाकर रे मन मूरख, सोच भला तू क्या किया॥
जो बीता सो गया बीत दिन, रहे का कम नहीं तोल है।
विषयों के पीछे पड़ पगले, कर रहा माटी मोल है ॥३॥
सदाचार सत्संग सतगुरु, ये तीनों सम्बल लेकर।
करहु भजन विश्वास सुदृढ़ करि, अन्तर्मुख हो चित देकर॥
ऐसा कर मन मोल बचा ले, 'शाही' यह जो चोल है।
विषयों के पीछे पड़ पगले, कर रहा माटी मोल है ॥४॥

शब्दार्थ—मान मान = कहना मानो, मान लो। तन = देह, शरीर। रतन = रत्न। अनमोल = बहुमूल्य। माटी मोल = मिट्टी की कीमत में। महिमा = प्रशंसा, बड़ाई, महत्ता, माहात्म्य। बोल = विचार कहना, वक्तव्य, मन्तव्य। मूरख = अज्ञानी, अनजान, नादान, नासमझ। क्या किया = अच्छा नहीं किया। तोल = तौल, वजन, माप। मोल = कीमत। पीछे = संग-संग, संग लगकर। सम्बल = महत्त्वपूर्ण सहायक, सहारा, यात्रा के दौरान पास की अति आवश्यक चीजें। सुदृढ़ = अत्यन्त मजबूती के साथ, अत्यन्त अचल। चित = चित्त, दिल। चोल = शरीर, देह, तन।

भावार्थ—ऐ मेरे मन! मैं जो तुम्हें कह रहा हूँ, उसे मान लो, खूब अच्छी तरह कहना समझ लो, बल्कि गठरी बाँध लो और कभी मत भुलाना।.....यह जो तुम्हारा शरीर है, परम प्रभु सर्वेश्वर की सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ, बहुमूल्य रत्न, हीरा जैसा ही है। यदि ऐसे अनमोल हीरा-सा शरीर को विषयों में लगा रहे हो, तो मैं पक्की बात कहता हूँ कि ऐसा करना तुम्हारा बिल्कुल पागलपन ही है, यह तुम्हारी एकदम नासमझी, नादानी है और इसे मिट्टी की कीमत में व्यर्थ गँवाए जा रहे हो॥१॥ मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्रजी, भगवान के पूर्णावतार श्रीकृष्णजी और ऋषि-मुनियों ने इसकी (मनुष्य-शरीर की) महत्ता का बखान, गुणगान किये। वेद, पुराण आदि समस्त ग्रंथों में इसकी बड़ी प्रशंसा लिखी हुई है। इस कलिकाल के भी जितने संत हैं, सबों का एक ही कथन है। यदि इस बहुमूल्य मनुष्य-शरीर को विषयों के पीछे लगाये हुए हो, ऐ पागल मन! तू

कहते हैं कि अरे मन! तू सावधान हो, सजग हो कर मनोयोगपूर्वक संत सद्गुरु की बतायी सद्युक्ति के मुताबिक सबसे बड़ा फल मोक्ष पाने की आकांक्षा पूर्ण करने के लिए अविलंब सुमिरण-ध्यान में संलग्न हो जाओ, कल का भरोसा तो बिल्कुल मत करो॥

(४२)

गुरुदेव रीझ जाओ, अवगुण बिसार सारे।
ले लो शरण में अपनी, भव से करो किनारे॥
अति दीन हूँ दुखित हूँ, त्रय व्याधि से व्यथित हूँ।
भव त्रास से त्रसित हूँ, पाये बिना सहारे॥
दीजै प्रभू सहारा, धरि ज्योति शब्द धारा।
हों त्रय पटों से न्यारा, चरणों लगूँ तुम्हारे॥
हे नाथ अब न टालो, अपनी विरद को भालो।
बिगड़ी मेरी सँभालो, 'शाही' के हे सहारे॥

शब्दार्थ—रीझ = प्रसन्न हो। अवगुण = भावी जीवन को भयंकर खतरनाक बना देनेवाला भीतर का खराब स्वभाव, दुर्गुण, अशुभ विचार, कुविचार, दुर्व्यवहार, खराब आचरण। बिसार = भुला दें। सारे = समस्त। किनारे = मंजिल तक, गन्तव्य स्थान, पार। अति = अत्यन्त। दीन = लाचार, बेसहारा, दरिद्र, दुर्दशा, संकटापन्न। दुखित = दुःखी। त्रय = तीन। व्याधि = विपत्ति, पीड़ा, दुःख, तकलीफ, व्यथा। व्यथित = दुःखी, पीड़ित। त्रास = भय, डर। त्रासित = डरा हुआ, भयभीत, भयाक्रांत। न्यारा = अलग होना, पार हो जाना। न टालो = देर न लगाएँ, दूर न रखें। विरद = प्रतिज्ञा, संकल्प, स्वभाव, टेक। भालो = नजर रखें, ख्याल करें। बिगड़ी = बिगड़ते कार्य, सारी अशांति का कारण।

भावार्थ—हे मेरे गुरुदेव, संत सद्गुरु महाराज (परमाराध्य अनंत श्रीविभूषित संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज)! हमारे समस्त दुर्गुणों, कुविचारों, कल्मषों, भावी जीवन को भयंकर दुःखमय, खतरनाक बना देनेवाले अंतर की दूषित भावनाओं, दोषों को भुलाकर प्रसन्न हो जाएँ। अपनी सान्निध्यता प्रदान कर मुझे

अपना लेने की कृपा करके संसार समुद्र से पार कर देने की महान् अनुकम्पा कर दें॥ हे गुरु महाराज! मैं क्या कहूँ अपनी दुर्दशा, मैं तो अत्यन्त ही विपन्न, बहुत ही दयनीय, लाचार स्थिति में पड़ा हुआ, भारी विपद्ग्रस्त, संकटापन्न (संसार-समुद्र में जीवन नैया डूबने-डूबने को डगमग-डगमग कर रही है) हूँ, बहुत ही कष्टप्रद तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक) विपत्तियों से पीड़ित हूँ। आपके आश्रय के अभाव में संसार के भय से भयभीत हूँ॥ हे प्रभु! मुझ पर ऐसी अनुकम्पा कर दें कि आपके पास पहुँचने का माध्यम, सहारा आपकी ही ज्योति और शब्द की धारा है, उन्हें मैं पकड़कर, धारण कर तीनों परदों (अंधकार, प्रकाश और शब्द) से पार हो जाऊँ, यही आपके चरणारविन्द में माथा टेककर मेरी बारंबार प्रार्थना है॥ संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि हे मेरे सर्वस्व स्वामी, अधीश्वर गुरुमहाराज! अब और मुझे न टालें, देर न लगाएँ, अविलंब अपनी प्रतिज्ञा, संकल्प की ओर नजर डालें, ख्याल करें तथा मेरे दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदलकर, सारे बिगड़ते कार्यों को सुधार दें, सँभाल दें॥

(४३)

सन्त-अंग (दोहा)

संत भेष से होत नहिं, नहीं कथे बहु ज्ञान।
ना मठ के अधिपति बने, ना तीरथ किये सनान॥
सन्त हुए सब भेष में, और हुए सब देश।
पढ़ुआ अनपढ़ुआ हुए, रंकहु हुए नरेश॥
विषय वासना है नहीं, दुःख का हूआ अन्त।
चौरासी चक्कर मिटा, ताको कहिये सन्त॥
शान्ती पद सबसे बड़ा, उससे बड़ा न कोय।
उस पद से जो जा मिले, सन्त कहावे सोय॥

शब्दार्थ—भेष = वेश-भूषा, पहनावा, बाहरी रंग-रूप, दिखावा, बनावटी रूप। कथे = व्याख्यान देने। मठ = मन्दिर, देवालय, आश्रम। अधिपति = प्रधान, मालिक, स्वामी। सनान = स्नान। पढ़ुआ = पढ़े-लिखे।

हुआ, परिपूर्ण। सादर = आदर के साथ। वाही = उन्हीं के। स्त्रष्टा = निर्माण करनेवाला, बनानेवाला। वाका = उनका। पीव = परम प्रभु परमात्मा, सर्वेश्वर। गुण से रहित = निर्गुण। परा = चेतन, कैवल्य। अपरा = जड़ (स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण मंडल)। सृष्टी = संसार, समस्त लोक-लोकान्तर। रुचि = चाहना, पसन्द, प्रीति, इच्छा। रंचहु = थोड़ा भी। बोध = ज्ञान। स्वान = कूकर, कुत्ता। लीन = लवलीन, मशगूल, भूला हुआ, निमग्न। मगर = घड़ियाल। कीन = करना। रहनी = रहन-सहन, क्रिया-कलाप। प्रकृति = वह मूलतत्त्व जिससे संसार बना है, चराचर संसार, स्वभाव। सृष्टि = संसार। लेहु = लें। सम्हारि = सँभाल, सुधार, अच्छाई की तरफ ले जाना, अशुभ से अपने को बचा लेना। निज = अपना। सकल = सभी, समग्र, समस्त। क्लेश = क्लेश, कष्ट, दुःख, विपत्ति, आपदाएँ। अनुकूल = मुताबिक, मुआफिक, तहत, अंदर, अक्षरशः पालन करना। शूल = काँटा, लोहे की नुकीली कील। क्षार = राख। अमल = अभ्यास। या = इस। तन = शरीर। अभेद = भेद-रहित, कोई भेद नहीं, एक ही हो जाना। रिझाय = प्रसन्न। आशीष = आशीर्वाद। तपन = संताप, कष्ट, दुःख, ताप। बुझाय = शांत करना, समाप्त करना, अंत करना। सम = बराबरी में। सर्व = सभी, सब, समस्त। खटपट = दौड़-भाग, अशांति, चंचलता, बहिर्मुखता। सिद्ध = प्रमाणित, पूरा किया हुआ, सत्य माना हुआ, पक्का, दक्ष, निपुण, विशेषज्ञ, अलौकिक शक्ति से सम्पन्न। नीके = अच्छी तरह, ठीक-ठीक। हिये = हृदय में। उगाय = प्रकट कर लेना, प्रत्यक्ष कर लेना, उगा लेना। टिकाय = ठहराकर रखना, ठहराना, स्थिर करके रखना, स्थिर कर देना। एक टक्क = स्थिर दृष्टि से देखते रहना। अद्‌भुत = विलक्षण, विचित्र, आश्चर्यमय। लखाय = दिखाई पड़ना। पुनि = पुनः, फिर। बाँह = भुजा, हाथ। नाह = परम प्रभु परमात्मा, सर्वेश्वर, अधीश्वर। येन केन प्रकारेण = जिस किसी भी तरह से।

भावार्थ—जो हमेशा आदर के साथ संत सद्‌गुरु के उपदेश, आदेश, निर्देश, सद्‌शिक्षा-दीक्षा के मुआफिक अनुपालन करते हैं, अपने को उन्हीं के सद्‌ज्ञान के परिवेश, अंदर अक्षरशः रखते हैं, वे सर्वदा समस्त ऐश्वर्यों, वैभवों से परिपूर्ण, सम्पन्न रहते॥ संत सद्‌गुरु

का उपदेश है कि संसार के निर्माण करनेवाले कोई एक ही है, जिनकी शुरूआत और अंत कुछ भी नहीं है, उनका अनेकों नाम हैं॥ सबों की देह में उन्हीं का अंश जीव कहलाता है। वे सब जीवात्मा के अंशी एक मात्र प्रभु सर्वेश्वर परमात्मा हैं॥ सभी गुणों (सत्, रज और तम) से परे, निर्गुण परा (चेतन) प्रकृति और सभी गुणों से युक्त सगुण (जड़) अपरा प्रकृति को मानो, जानो। इन्हीं दोनों प्रकृतियों के संयोग, सम्मिश्रित रूप को ही सारी सृष्टि जानो॥ तुम संसार के विषयों (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द) में अनुराग मत करो। इसका अस्तित्व, स्थिति तो तभी तक है, जबतक परम प्रभु परमात्मा की इच्छा है, मौज है; परन्तु इसमें किंचित् मात्र भी सुख नहीं है॥ विषयों में तो सुख का लगना, बोध होना, तो उसी तरह का जानना चाहिए, जिस तरह वर्षों की सूखी हुई हड्डी में कुत्ता सुख महसूस करता है (चूँकि उस हड्डी में न तो मांस है और न रक्त, रस ही है, सुख तो कुत्ते को हड्डी के ठोकर से उसके मसूड़े से रक्त जो निकलता है, उसी का है, हड्डी का नहीं)॥ यदि कोई भक्त मुमुक्षु, साधु हृदय में परम सुख, स्थायी अनंत सुख-शांति की कामना करे और अपने को विषय रसरूपी आनंद वाटिका में रमण करे विषयानंद में लीन रखे, तो जान लेना चाहिए कि वह भक्त, मुमुक्षु, साधु, संन्यासी घड़ियाल की पीठ पर बैठकर, सवार होकर समुद्र को पार करना चाहता है, जो बिल्कुल ही असंभव है॥ अपने रहन-सहन, आचार-विचार, व्यवहार को सँभाल लें और संत सद्‌गुरु महाराज के उपदेश, आदेश, निर्देश में अपने को रखें। अर्थात् सत्संग नित अरु ध्यान नित, रहिये करत संलग्न हो। व्यभिचार, चोरी, नशा, हिंसा, झूठ तजना चाहिए॥ इन उपदेशों के साथ-साथ अपने को शिष्टाचार, शुच्याचार और संत सद्‌गुरु की निष्कपट सेवा में लगाए रखना चाहिए॥ अच्छी रहनी, सद्‌व्यवहार, विशुद्धाचार, विचार के अभाव में समस्त आपदाएँ, कष्ट उपजते हैं॥ शिष्य तो वही है, जो संत सद्‌गुरु महाराज के सद्‌ज्ञान, सद्‌शिक्षा को अक्षरशः हृदयंगम कर ले, अनुपालन कर ले, सर्वदा उनके सिखावनरूपी चहारदीवारी के अंदर अपने को रखे। यदि संत सद्‌गुरुदेव के सदुपदेशों को न माने, हृदय

शब्दार्थ–पद = चरण। सीस = मस्तक। कर = हाथ। जोर = जोड़कर। विनती = प्रार्थना। बन्दी छोर = शरीर और संसाररूपी कारागार से मुक्ति दिलानेवाले, छुड़ानेवाले, समस्त बंधनों से छुड़ानेवाले। सगा = संबंधी, हितैषी। दूजा = दूसरा, अन्य। ठौर = जगह। अनिष्ट = अहित, संकट। विलोकिहौं = दृष्टि डालेंगे। किरपा = अनुकम्पा। गुण = सद्गुण, शुभगुण। अवगुन = दुर्गुण, दोष, कल्मष। बान = स्वभाव, प्रतिज्ञा, संकल्प। खान = खजाना, भंडार। रुचिकर = प्यारा, प्यारी, बड़ा ही प्रिय, अतिशय प्रिय, स्वादिष्ट। अरुचि = अप्रिय, खराब, कटु। न कोय = कुछ भी नहीं, कोई भी नहीं। सरबर = बराबरी, समानता, तुलना। जहान = संसार। बिसराय = भुलाकर। निहकाम = कामना-रहित, इच्छा विहीन, बगैर तमन्ना। आठो याम = हर वक्त, चौबीसो घंटे। समदर्शी = समस्त प्राणियों को समान भाव से देखनेवाले। जलवत् = जल की तरह। ठौर = जगह, स्थान, स्थल। गड्ढा रूप = गहराई वाले, अत्यन्त श्रद्धावान, सत्यनिष्ठ सेवाशील, विशुद्ध मनोयोग से आज्ञा का पालन करनेवाले। दौर = दौड़कर, अतिशीघ्र, अविलम्ब, तत्क्षण। ठहरत = अवस्थित होता, स्थिर होता, इकट्ठा होता। बतलाय = बताकर, सदुपदेश प्रदान कर, सिखाकर। दयाल = बहुत दया प्रदान करनेवाले, दयालु, दयावंत, दयावान। लीन्हों = अपना लिये, ग्रहण कर लिये, स्वीकृति प्रदान किये। सतपथ = सन्मार्ग, सच्ची राह, सत्य-सत्य रास्ता। धराय = पकड़ाए, रास्ते पर चलाए। सबल = बलिष्ठ, बलवान, सक्षम, सामर्थ्यवान। ऐसहि = इसी तरह। मंदिर = अति पवित्र घर भवन।

भावार्थ–हे मेरे श्रीमन् संत सद्गुरु महाराज! आपके चरणारविन्द में अपना मस्तक रखकर मैं दोनों हाथों को जोड़कर बार-बार प्रार्थना करता हूँ। हे सद्गुरुदेव! आप संसार और शरीररूपी कारागार से मुक्ति दिलानेवाले हैं, समस्त बंधनों को काटने एवं दुःखों के समुद्र से उबारनेवाले हैं॥ हे मेरे संत सद्गुरु भगवान सर्वेश्वर! आपके समान मेरे संबंधी, हितैषी परिजन अपने और कोई भी दूसरे नहीं हैं, चाहे माँ-पिताजी, भाई-बहन कोई भी हों। संसार में हर जगह मैंने दृष्टि दौड़ाकर देख लिया॥ मेरा जीवन तो तबही

सफल, सार्थक हो पाएगा, तथा मेरे सभी संकटों का निवारण होगा, जबकि हे मेरे मालिक जीवन आधार स्वामी! आप मेरे ऊपर अपनी अनुकम्पाभरी दृष्टि डालेंगे॥ मुझमें शुभगुण तो कुछ भी नहीं है, मैं सिर्फ दुर्गुणों का भंडार, खजाना, सरदार हूँ। फिर भी आपकी आदत, आपका स्वभाव, संकल्प को जानकर मुझे आपसे बहुत उम्मीद है॥ मैं चाहता हूँ कि मुझे भक्ति, ध्यान-सत्संग बड़ा ही प्रिय लगे, विषय बिल्कुल ही अच्छा न लगे। पर हे मेरे गुरुदेव महाराज! आपकी अनुकम्पा के बगैर भक्ति के प्रति अनुराग और विषयों से वैराग्य हो जाना असंभव ही है॥ हे गुरु महाराज! आप जिनके भी मनरूपी मंदिर में निवास कर जाते हैं, उनका बहुत बड़ा विशाल भाग्य हो जाता, वे बड़े ही सौभाग्यशाली, खुशनसीब हो जाते। समस्त संसार में उनकी बराबरी कोई भी नहीं कर पाते॥ हानि-लाभ भुलाकर, मन से हटाकर, जो कामना-रहित, परिशुद्ध भावना से सेवा करते, ऐसे सेवक पर संत सद्गुरु महाराज की सर्वदा, चौबीसे घंटे कृपा बरसती रहती है॥ भले ही कोई राजा हों, सम्राट हों या भारी गरीब हों, निर्धन हों, ना समझ, नादान हों या भारी विद्वान हों। संत सद्गुरुदेव तो समदर्शी होते हैं, सबों पर उनकी एक समान निगाह, कृपा रहती है॥ संत सद्गुरु महाराजजी की अनुकम्पा जल की तरह हर जगह बरसती है। आज्ञाकारी, अत्यन्त श्रद्धावन्त, विशुद्ध मनोयोग से आदेश-उपदेश का अनुपालन करनेवाले, सेवाशील, सदाचारी, शिष्टाचारी, शुच्याचारी, दृढ़ ध्यानाभ्यासी रूप गहरे हृदयवाले सौभाग्यशाली शिष्य में गुरुदेव की कृपारूप जल दौड़-दौड़कर आता है॥ भक्त पर अत्यन्त अनुग्रह करनेवाले कृपावन्त संत सद्गुरु दया प्रदान कर अपनी शरण में ले लिये। परम प्रभु सर्वेश्वर प्राप्ति की विधिवत् प्रक्रिया बताकर, सिखाकर ब्रह्मज्योति और ब्रह्मध्वनि निरखने, परखने की सच्ची राह पकड़ा दिये, जिसके सहारे मुमुक्षु परम प्रभु परमात्मा की गोद में चले जाते॥ जबतक शरीर में ताकत है, बुद्धि साथ दे रही है, यह बात ठीक से समझ लो, जान लो कि संत सद्गुरु की भक्ति, परम प्रभु की प्राप्ति का स्वर्णिम अवसर तबही तक तुम्हारी हथेली में है॥ अरे मेरे मन! भूल से यह मत समझ लेना

(४७)

अरे मन सोच ले केवल, भजन गाने से क्या होगा।
समय का मूल्य न जाना, तो पछताने से क्या होगा॥
न दी दिल में जगह गुरु को, पखारा पद न आँसू से।
विरह में नींद न खोया, तो शिष होने से क्या होगा॥
भरोसा है किया जग का, गुरु के आस को तजकर।
नहीं विश्वास जब दिल में, तो गुण गाने से क्या होगा॥
रिझाया खूब दुनिया को, सुना बातें बना बहुतों।
रिझाया यदि न अपने को, रिझा दुनिया को क्या होगा॥
सोच लो समय के रहते, बना लो 'शाही' जीवन को।
समय जब बीत जाएगा, बहा आँसू को क्या होगा॥

शब्दार्थ—केवल = सिर्फ, एकमात्र। क्या होगा = कुछ भी संभव नहीं। मूल्य = कीमत, महत्ता। जाना = पहचाना, बोध प्राप्त किया। पछताने = पश्चात्ताप करने से। दिल = अपने अंदर, हृदय में। पखारा = धोया, प्रक्षालन किया। पद = चरण, पाँव। विरह = अलगाव, जुदाई। खोया = परित्याग कर दिया, गँवाया। शिष = गुरुभक्त, शिष्य। किया = क्या। आश = आशा, भरोसा, उम्मीद, आसरा। रिझाया = प्रसन्न कर लिया, अपनी ओर आकर्षित कर लिया। अपने को = परम प्रभु सर्वेश्वर संत सद्गुरु महाराज को। बना लो = निर्माण कर लो, सफल कर लो।, सार्थक कर लो, कल्याण कर लो।

भावार्थ—अरे मेरे मन! जरा विचार कर लो, तुम जो सिर्फ भजन पद्य गाने, सुनाने में ही लगे रहते हो, इससे कुछ होगा? इससे कुछ भी संभव नहीं है। यदि तुम्हें वर्तमान जीवन, समय की महत्ता, कीमत समझ में नहीं आयी, तूने इस जीवन का मोल नहीं समझा, तो अंत समय बहुत पछताएगा। फिर उस भयंकर दुर्दिन, कष्ट की घड़ी में पश्चात्ताप करने मात्र से क्या फायदा? न तो अपने हृदय में संत सद्गुरु महाराजजी को शुभासीन कराये, स्थान दिया अर्थात् अत्यन्त अटल श्रद्धा से गुरुदेव के सद्ज्ञान को मनोयोगपूर्वक अनुपालन नहीं किया, प्रभु वियोग में विरह वेदना भरे पश्चात्ताप के अश्रु से उनके

चरण-कमलों को न धोया। यदि परम प्रभु परमात्मा संत सद्गुरुदेव के अलगाव, उनकी जुदाई की यातना में विरहाकुल हो निन्द्रा का परित्याग न किया अर्थात् अहर्निश, गुरुदेव की सद्युक्ति के मुताबिक सुमिरण, ध्यान, सत्संग, सदाचार, शिष्टाचार, शुच्याचार का अत्यन्त श्रद्धापूर्वक जीवन में पालकर, अपने आपको अंधकार से प्रकाशमंडल, तुरीय अवस्था में प्रतिष्ठित यदि नहीं किया, सदा के लिए अपने को उठा, जगा न लिया (चूँकि गो० तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—'यहि जग जामिनि जागहिं जोगी।' 'जानिय तबहिं जीव जागा। जब सब विषय विलास विरागा॥' तो गुरुभक्त, संत संतान, शिष्य कहलाने मात्र से क्या होगा? अर्थात् कुछ भी नहीं होगा॥ एक मात्र गुरुदेव संत सद्गुरु महाराजजी की अनुकम्पा, आशा, भरोसा, उनके आसरे को छोड़कर संसार पर अपने को अवलंबित रखने, जगत् के भरोसे रहकर क्या होगा? कुछ नहीं अपनी बात बनेगी। संसार के संबंध में हमारे परमाराध्य अनंत श्रीविभूषित संत सद्गुरु महर्षि मँहीं परमहंसजी महाराज कहते हैं कि 'यह जग दुख को धाम', 'यह जग जानो छली महाई।' अतः संत सद्गुरुदेव की आशा छोड़ दुनिया पर आशा-भरोसा रखने से जीव का मनोरथ, अक्षय, अनंत सुख-शांति स्वरूप परम प्रभु परमात्मा की उपलब्धि तथा समस्त दुःखों (जन्म-मृत्यु के भयंकर कष्टों का, संसृति के समग्र संतापों, त्रय तापों) से सदा के लिए छुटकारा नहीं मिल सकती। जब दिल में, अपने हृदय में संत सद्गुरु पर विश्वास ही नहीं, तो सिर्फ उनके गुणों, उनकी महिमा का गायन करने से क्या लाभ? कुछ भी होनेवाला नहीं है अर्थात् अपने जीवन की बागडोर गुरु महाराज के हाथों सौंप देनी चाहिए॥ संसार के लोगों को मनोरंजन की बहुत सारी बातें बना-बनाकर खूब सुनाया और बहुतों को प्रसन्न कर लिया। यदि अपने परम प्रभु सर्वेश्वर संत सद्गुरु महाराज को प्रसन्न नहीं किया, तो सिर्फ संसार को खुश कर लने से क्या होगा? अपना कल्याण हरगिज संभव नहीं॥ संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि मैं बिल्कुल पक्की बात कहता हूँ, जो बड़ा ही मार्मिक है, विचारणीय

रत्न को सचमुच ही बर्बाद कर दिया। अतः सबों को चाहिए कि गुरुदेव के सद्ज्ञान को प्राप्त कर उसके मुताबिक अपने जीवन को ढाल कर इस मानव जीवन को सार्थक, सफल बना लें, इसी में उनकी बुद्धिमानी, चतुराई और उद्धार, भलाई है॥३॥

(४९)

॥ विनती (भोजपुरी) ॥

ऊ दिन कहिया दिखाइब, बता दीं गुरुजी ।टेक॥
जहिया से रउरे चरन कमल में,
अविचल शरधा जमाइब, बता दीं गुरुजी.....॥१॥
छोड़ि के कपट छल, निरमल मन से,
हरषित हृदय अरु पुलकित तन से ।
राउर विमल जस गाइब, बता दीं गुरुजी.....॥२॥
दोष हरे वाला, राउर दरशन तोष करे वाला,
राउर परशन। केतनो करब न अघाइब, बता दीं गुरुजी..॥३॥
जोति रूप रउरे आपन दिखाके,
नादरूप रउरे आपन परखाके ।
'शाही' के शरण लगाइब, बता दीं गुरुजी.....॥४॥

शब्दार्थ—ऊ दिन = वह दिन, वह समय, वैसा जीवन, वैसा दर्शन। कहिया = कब, किस समय, किस वक्त। दिखाइब = दिखाइयेगा, अवलोकन करायेंगे, दर्शन कराएँगे। दीं = दें। जहिया = जब। रउरे = आपके। अविचल = अचल, स्थिर, अविच्छिन्न, स्थायी रूप से, अटूट। शरधा = प्रेम और भक्तियुक्त पूज्यभाव, पूर्ण विश्वास, भरपूर आस्था। जमाइब = मजबूती से बैठाएँगे दिल में स्थापित करेंगे। कपट = धोखा देनेवाला स्वभाव, धोखा देना, बनावटी व्यवहार। छल = धूर्तता, असलियत को छिपाना, यथार्थ को गुप्त कर देना। निरमल = अति पवित्र, स्वच्छ, दोषों से रहित। हरषित = प्रसन्न। पुलकित = हर्ष-विह्वल, प्रफुल्लित। राउर = आपका। विमल = विशुद्ध, स्वच्छ, निर्दोष, साफ। जस = यश, सुख्याति, कीर्ति, प्रशंसा। दोष = विकार, कसूर, ऐब, कलुष, पाप, खराबी (काम, क्रोध, मोह, मद, लोभ, मत्सर)।

तोष = संतुष्ट, तृप्त। परसन = स्पर्श करना। अघाइब = तृप्त हो जाना, प्रसन्न हो जाना। परखा = दिखाना, अनुभूति करा देना। शरण = आश्रय, सान्निध्य, सन्निकट, समीप।

भावार्थ—हे मेरे गुरुदेव (परमाराध्य अनंत श्रीविभूषित संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज)! आपके चरणारविन्द में मेरी प्रार्थना है कि मुझे वह समय, दिवस कब देखने को मिलेगा। मेरे जीवन में कब वैसा समय, सौभाग्य अवलोकन होगा? अपनी महान् अनुकम्पा कर बता देने की दया करें।टेक॥ कि जब मैं आपके अम्बुज सरिस परम पावन पाद-पद्मों में अविच्छिन्न रूप से अपने हृदय में भरपूर आस्था स्थापित करूँगा, कहने की अनुकम्पा करें॥१॥ बनावटी व्यवहार, धूर्तता, अयथार्थता का गुप्त रखने आदि समस्त भारी दुर्गुणों का सदा के लिए परित्याग कर, बिल्कुल विशुद्ध मन से, प्रसन्न हृदय और प्रफुल्लित शरीर से आपकी परम पावनी सुख्याति, सुकीर्ति का गायन करूँगा, हे गुरु महाराज! मुझे बता देने की अनुग्रह प्रदान करें॥२॥ शरीर के भीतर विराजित समस्त विकारों, दोषों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर) को नाश कर डालनेवाला आपका विशुद्धकारी दर्शन, समग्र तृष्णाओं, तमाम कामनाओं (जो प्राणी को स्वप्न में भी सुखी होने नहीं देता। 'काम अछत सुख सपनेहु नाहीं।' रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं) को समाप्त कर संतुष्ट कर देनेवाला आपके (परम पूज्यपादश्री) अति पावन पदाम्बुजों का मंगलकरण स्पर्शन। मैं कितना भी करूँ, इन दर्शन एवं स्पर्शन से मेरा जी कभी भरे ही नहीं, मैं अघाऊँ ही नहीं, ऐसा सुनहला मौका मुझे कब हाथ लगेगा, हे प्रभु बता देने की कृपा करें॥३॥ संत सद्गुरु महर्षि शाही स्वामीजी महाराज कहते हैं कि हे गुरुदेव! मुझे अपने दिव्य ज्योतिर्मय-रूप को दिखाकर और अपने अमृतमय शब्द-रूप परखाकर आप कब अपनी शरण में लगाएँगे, बता देने की महान् अनुकम्पा कर दें॥४॥ अतः हम सबों को चाहिए कि अपने अंदर की ब्रह्मज्योति और ब्रह्मध्वनि को संत सद्गुरु महाराज द्वारा प्रदत्त साधन विशेष से निरख, परख, अनुभव कर आत्मा की पहचान कर परम प्रभु परमात्मा गुरुदेव की शरण